ओ३म्
भक्तिलहरी
रचयिता
पूज्य स्वामी समर्पणानन्द जी सरस्वती
(विद्यामार्तण्ड पं. बुद्धदेव विद्यालङ्कार)

ओ३म्

भक्तिलहरी

रचयिता

पूज्य स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती

(विद्यामार्तण्ड पण्डित बुद्धदेव विद्यालङ्कार)

'छात्रोपयोगिनी' टीकासहित

– टीकाकार –

आचार्य बृहस्पति

स्नातक – गुरुकुल प्रभात आश्रम

प्रधानाचार्य – नव प्रभात आश्रम वैदिक विद्यापीठ, उड़ीसा

प्रकाशक

स्वामी समर्पणानन्द वैदिक शोध संस्थान

गुरुकुल प्रभात आश्रम, टीकरी, भोला झाल, मेरठ – २५०५०१ (उ.प्र.)
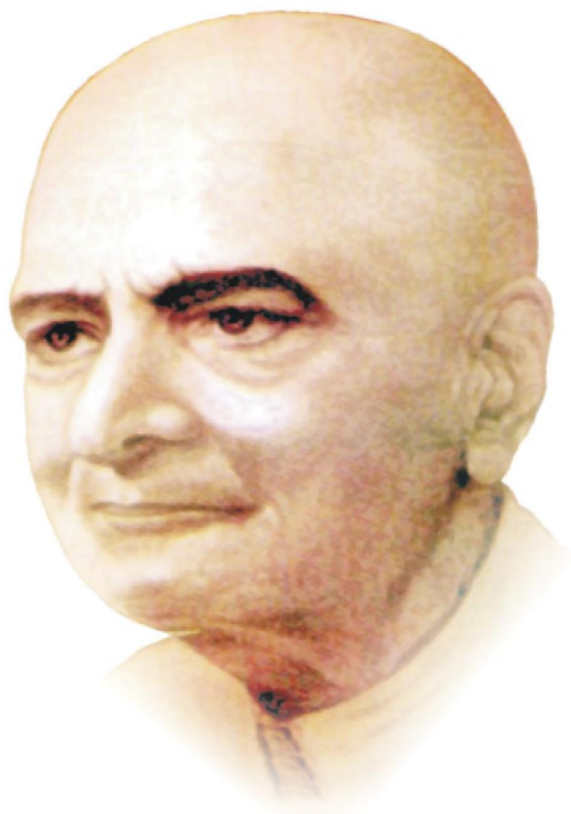
पूज्य स्वामी समर्पणानन्द जी सरस्वती

(विद्यामार्तण्ड पण्डित बुद्धदेव विद्यालङ्कार)

स्वामी समर्पणानन्दजी महाराज का एक भक्तिमय पद्य

वृक्षाली केशपाशः सितमसृणरुचिर्मेघमाला दुकूलम्
वक्षोभावं प्रयातो हिमधवलगिरिर्ब्रह्मसूत्रं वितानम्।
वात्सल्यं व्याकरोति प्रतिदिशमनिशं सन्ततिर्निर्झराणाम्
पश्यन्त्यत्रापि ये त्वां नहि जननि! कथं ते जना वर्णनीयाः॥

अन्वयः

वृक्षाली केशपाशः, सितमसृणरुचिः मेघमाला दुकूलम्, हिमधवलगिरिः वक्षोभावं प्रयातः, वितानं ब्रह्मसूत्रं, निर्झराणां सन्ततिः प्रतिदिशम् अनिशं वात्सल्यं व्याकरोति। जननि! अत्र अपि ये त्वां नहि पश्यन्ति, ते जनाः कथं वर्णनीयाः॥

शब्दार्थः

वृक्षाली= वृक्षावलि, **केशपाशः**= संवारे हुए प्रशस्त बाल, **सितमसृणरुचिः**= श्वेत एवं स्निग्ध कान्तियुक्त, **मेघमाला**= मेघमाला, **दुकूलम्**= रेशमी दुपट्टा, **हिमधवलगिरिः**= शुभ्र हिमालय, **वक्षोभावम्**= वक्षस्थलता को, **प्रयातः**= प्राप्त है, **वितानम्**= विस्तृत आकाश, **ब्रह्मसूत्रम्**= शाटिकाञ्चल, **प्रतिदिशम्**= प्रत्येक दिशा में, **निर्झराणाम्**= झरनों का, **सन्ततिः**= अविरल प्रवाह, **अनिशम्**= निरन्तर, **वात्सल्यम्**= वात्सल्य को, **व्याकरोति**= प्रकट कर रहा है, **जननि!**= हे माँ, **अत्र**= इन सभी वस्तुओं की विद्यमानता में, **अपि**= भी, **ये**= जो, **त्वाम्**= तुम्हें, **नहि**= नहीं, **पश्यन्ति**= देखते हैं, **ते**= वे, **जनाः**= लोग, **कथम्**= किस प्रकार, **वर्णनीयाः**= वर्णनीय होवें॥

भाषार्थः

हे जगज्जननि! ये दरीदृश्यमान पंक्तिबद्ध वृक्ष-वनस्पति तुम्हारे संवारे हुए प्रशस्त बाल ही तो हैं, श्वेत और स्निग्ध कान्तियुक्त मेघमाला तुम्हारा रेशमी दुपट्टा है, हिमाच्छन्न शुभ्र हिमालय तुम्हारे वक्षस्थल की शोभा को धारण कर रहा है, यह वितान आकाश तुम्हारी शाटिका का आँचल है तथा चारों ओर झरनों का अविरल प्रवाह (शिशु को दूध पिलाती माँ के समान) तुम्हारे ममतामय वात्सल्य को निरन्तर व्यक्त कर रहा है। यहाँ स्पष्ट परिलक्षित इन सभी वस्तुओं की विद्यमानता में भी जो लोग तुम्हारे दिव्य स्वरूप का दर्शन नहीं करते हैं, उनका किस प्रकार वर्णन किया जावे अथवा उनको क्या कहा जावे?

उद्भाव

सृष्टि में जितने भी सम्बन्ध हैं, उनमें परस्पर के सम्बन्ध की प्रगाढता को अभिव्यक्त करने के लिए 'भक्ति' से अधिक उपयुक्त शब्द को संस्कृतसाहित्य का पूर्ण आलोडन-विलोडन करने के पश्चात् भी उपलब्ध कराना पण्डितपुङ्गवों के लिए भी सरल नहीं। इसीलिए किसी के प्रति प्रेमातिशयत्व या समर्पितत्व को प्रदर्शित करने के लिये भक्ति-शब्द का प्रयोग किया जाता है। जैसे- ईश्वरभक्ति, राष्ट्रभक्ति, गुरुभक्ति, मातृ-पितृभक्ति, पतिभक्ति आदि शब्द इसके उदाहरण हैं। भक्ति-शब्द का पर्याय समझा जाने वाला अनुरक्ति-शब्द भी भक्ति के अर्थ के अशेष अर्थ को अभिव्यक्त करने में सक्षम नहीं।

कारण स्पष्ट है- भक्ति जिस भावना से उद्भूत होती है, उसके उदय होने पर भक्त अपने आराध्य के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ की अभिकाङ्क्षा या अभिलाषा नहीं करता। इसी भाव को अभिव्यक्त करते हुए किसी भक्त ने इस प्रकार कहा है-

न धनं न जनं न च सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनि ईश्वरे भवताद् भक्तिरहैतुकी त्वयि॥

पूज्य स्वामी समर्पणानन्द जी द्वारा विरचित **'भक्तिलहरी'** में इसी भावना का पदे-पदे दर्शन होता है। इसका रसास्वादन आबालवृद्ध, वनिता सभी कर सकें, इसके लिए भावार्थ ही नहीं, अपितु शब्दार्थसहित इसके प्रकाशन की आवश्यकता थी। गुरुकुल प्रभात आश्रम के सुयोग्य स्नातक आचार्य बृहस्पतिजी ने इस क्लिष्ट कार्य को सरल कर दिया है। अब शब्दार्थ के साथ-साथ भाव का भी हृदयङ्गम करते हुए 'भक्तिलहरी' के अगाध सलिल में अवगाहन का अबाध अवसर भक्तजनों को सुलभ हो सकेगा और वे इसमें निमज्जन कर त्रिविध तापों से विमुक्त होकर आनन्दरस की अनुभूति कर सकेंगे।

इन्हीं भावनाओं से आप्लावित

स्वामी विवेकानन्द सरस्वती
कुलाधिपति- गुरुकुल प्रभात आश्रम

विषयानुक्रमणिका

भक्तिलहरी : एक श्रद्धापूर्ण समीक्षा

डा. ओमशरण गुप्ता
पूर्वविभागाध्यक्ष - अंग्रेजी विभाग,
मेरठ कालिज, मेरठ

प्रातःस्मरणीय स्वनामधन्य स्वामी समर्पणानन्द जी का बहु-आयामी व्यक्तित्व रहा। एक ओर वे वेद-शास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित और उद्भट विद्वान् थे। उनका शतपथ-भाष्य उनके गहन और विलक्षण ज्ञान का उदात्त परिचायक है। वे ज्ञानमार्ग के अथक पथिक रहे। परन्तु वे न केवल प्रखर मेधासम्पन्न महामानव थे, अपितु एक संवेदनशील और भावुक भक्त भी थे। जहाँ ज्ञानयोग से उन्होंने निराकार, अकाय ब्रह्म की अनुभूति की थी, वहीं भक्तियोग से उस जगज्जननी के प्रति तीव्र अनुराग उनके संवेदनशील हृदय की गहराईयों को झकझोर गया था। उनका यह महान् व्यक्तित्व आदि शंकराचार्य की याद दिलाता है। शंकराचार्य ने गीता, ब्रह्मसूत्र और उपनिषदों का भाष्य किया है, जो उनको ज्ञानमार्ग में विशिष्ट स्थान दिलाता है; परन्तु उन्होंने कई भक्तिस्तोत्रों की भी रचना की है, जो उत्कृष्ट काव्य हैं और शंकर उस परमसत्ता की अनुभूति ज्ञान और भक्ति दोनों मार्गों से करते हैं।

'भक्तिलहरी' का प्रथम श्लोक ही ज्ञान से भक्ति की ओर जाने की तीव्र इच्छा व्यक्त करता है। शास्त्रों के गूढ अर्थों को जानने और सुनाने के बाद प्रभु के वात्सल्य और करुणा की अनुभूति और अभिव्यक्ति करने की लालसा इस श्लोक में व्यक्त होती है। दूसरा श्लोक अनन्य भक्ति की अभिव्यक्ति है, यह श्लोक गीता के बारहवें अध्याय (भक्तियोग) की याद दिलाता है। श्रीकृष्ण कहते हैं -

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप॥ गीता. ११/५४

क्या जड़, क्या चैतन्य, सभी भूतों में जिस आत्मभावना के द्वारा एक ही उपास्य दिखाई दे, एक प्रियतम के अतिरिक्त अन्य की कल्पना भी चित्त में न उठे, वही अनन्य भक्ति है। सर्वत्र वही तो है या सब वही तो है-

''ईशावास्यमिदं सर्वम्'' (यजुर्वेद. ४०/१) तथा

''लाली मेरे लाल की जित देखो तित लाल''

यह है अनन्य भक्ति। इसी अनन्य भक्ति से अभिभूत भक्त को सम्पूर्ण धरती और प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ में प्रभु का पवित्र नाम स्पष्ट लिखा मिलता है-

''न यत्र प्रत्युप्तं स्फुटमुपलभे नाम विमलम्।''

भक्तिलहरी. श्लोक. २, पंक्ति. ३

इसी प्रकार के गहन प्रकृति-रहस्यवाद के उत्कृष्ट भारतीय कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर हुए हैं। वैदिक ऋषियों की भांति टैगोर ने भी प्रकृति के विभिन्न पदार्थों के पीछे विश्वात्मा की तीव्र अनुभूति की है। वेद ने कहा है :-

देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।

टैगोर ने अपनी अमर कृति 'गीताञ्जलि' में इस उदात्त भाव को कई स्थलों पर मुखरित किया है। (इस काव्य पर टैगोर को नोबेल पुरस्कार मिला था) यथा:-

''प्रियतम! मैं जानता हूँ, यह तेरा प्रेम है जो पत्ते पत्ते पर
स्वर्णाभा बनकर चमक रहा है।
जिससे अलसाए मेघ आकाश में झूम रहे हैं, सुवासित पवन
मेरे मस्तक पर जलकण बिखेर जाता है।
यह सब, हे मनहरण प्रभो! तेरा ही प्रेम है।
आज प्रभात ही आकाश-धारा मेरी आंखों में भर गई है
यह तेरा ही प्रेमसंकेत है, जो जीवन के कण-कण को मिला है।''

(गीताञ्जलि- LIX- इंगलिश मौलिक का मेरा हिन्दी अनुवाद)

"In this playhouse of infinite forms. I have had my play and here have I caught sight of the formless." **(गीताञ्जलि)**

अर्थात् : ''असीम आकारों के इस क्रीडांगण में मैंने क्रीडा की है और यहाँ मैंने निराकार की झलक पाई है।''

अंग्रेजी साहित्य के अनेक महाकवियों ने भी इसी प्रकार के प्रकृति-रहस्यवाद की अनुभूति की है। Wordsworth ने अपनी कविताओं में Pantheism की सशक्त अभिव्यक्ति की है। Pantheism का अर्थ है- प्रकृति तथा प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ में परम सत्ता की सतत उपस्थिति का आभास। Wordsworth अंग्रेजी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ Pantheist poet है। उसकी अधिकांश कविताएं इसी अनुभूति का उदात्त उद्गार हैं। यथा :-

" Of something far more deeply interfused,
Whose dwelling is the light of setting suns,
And the round ocean and the living air,
And the blue sky, and in the mind of man." (Tintern Abbey)

अन्यत्र वह कहता है -

" In all things, in all nature, in the stars,
This active principle abides, from link to links
It circulates, the soul of all the worlds."

इंगलैण्ड में विलियम ब्लेक (Blake) तथा अमेरिका में Walt Whitman (व्हिटमैन) ने भी प्रकृति में परम सत्ता के दर्शन किए हैं और अपनी अमर काव्य कृतियों में इस अनुभूति को वाणी दी है। 'भक्तिलहरी' का दूसरा श्लोक स्वामी समर्पणानन्द जी को इन कवियों के समकक्ष खड़ा करता है।

अनन्य भक्त सब भार भगवान् पर छोड़ देता है और जब सच्चा भक्त पूर्ण समर्पण की भावना से अभिभूत हो सारा भार भगवान् पर छोड़ देता है तो वे उसका योगक्षेम वहन करते हैं। श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं-

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।। गीता.

'भक्तिलहरी' के तृतीय श्लोक में भक्तशिरोमणि स्वामी समर्पणानन्द जी भी अपना सब भार उसी पर छोड़ देते हैं -

''तरेद्वा मज्जेद्वा त्वयि निहितभाराः खलु वयम्।''

भक्ति से प्रपत्ति का आविर्भाव होता है, जो रामानुज के शब्दों में प्रभु के प्रति पूर्ण समर्पण है। गीता के शब्दों में :-

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।

तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।। गीता. १८/६१-६२

अंग्रेजी साहित्य के महान् कवि मिल्टन ने इसी भाव को अपने सोनेट 'On its blindness' में इन शब्दों में व्यक्त किया है :-

"They also serve who only stand and wait."

काव्य के निम्न प्रयोजन हो सकते हैं -

१. मनोरञ्जन करना (To entertain)

२. शिक्षा देना (To edify = didactic) तथा

३. आनन्दातिरेक में ले जाना (To enrapture, to elevate, to ecstasy)।

उच्च काव्य मानव को आनन्द के स्तर पर ले जाता है। 'भक्तिलहरी' का **१८वां** श्लोक भक्ति काव्य के आनन्द का उल्लेख करता है :-

मम श्रुत्वा काव्यं यदि मुदमुपेयुः सहृदयाः
कथं ब्रूयां न स्यान्मम सुखकरोऽयं व्यतिकरः।
इदं त्वन्यत् किञ्चिद्यदि नटति रोमावलिरियम्
यदास्मिन् व्यासङ्गे तव गुणकथा स्फूर्त्तिमयते।।

इक्कीसवें श्लोक में भी भक्त-कवि की भोली मधुर वाणी (मुग्धा) का जिक्र है, जो परमानन्दमय सागर में स्वेच्छापूर्वक निमग्न होती है -

निमग्ना स्वच्छन्दं भवति परमानन्दजलधौ।

प्रसिद्ध ग्रीकसमालोचक लौन्जाइनस (Longinus) ने श्रेष्ठ कविता का लक्ष्य 'उदात्त' (Sublime) बतलाया है, जो आनन्दातिरेक (Esctasy) में ले जाता है। उच्च कोटि के भक्ति काव्य में यह क्षमता है, जो 'भक्तिलहरी' में भी परिलक्षित होती है। भक्तिलहरी के **३३वें** श्लोक में पर्वतों जैसी ऊँची तरंगों वाली भक्तिलहरी (**गिरिसमशिखा भक्तिलहरी**) का उल्लेख है, जो मुझ भक्त-कवि को विवश कर बलपूर्वक आनन्दमय पर्वत के शिखर पर उछाल कर पहुँचा देती है :-

अतो ह्यानन्दाद्रेरधिशिखरमेषा प्रवहति
प्रसह्याधीनं (बलपूर्वक विवश कर) **मां गिरिसमशिखा भक्तिलहरी।**

Longinus के शब्दों में ऐसा Sublime काव्य होता है :-

"Transports us to ecstasy or lifts us out of ourselves."

भक्तिलहरी के अन्त में भक्त-कवि एक अबोध भोले भाले शिशु की भांति जगज्जननी की गोद में खो जाना चाहता है और उसकी करुणा और ममता की छाया में बसेरा चाहता है :-

लब्ध्वा यद् बिन्दुमात्रं मतिरपि शिशुकस्येह ते गाहितुं मे
सा मामङ्के लुठन्तं स्नपयतु सततं स्तन्यधारा जनन्याः॥

शिशु की भांति भक्त सरलता, ऋजुता, भोलापन जैसे गुणों से युक्त है और शिशु की भांति माँ के आंचल में सुरक्षित अनुभव करता है और शिशु की ही भांति **'अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में'** माँ के समक्ष पूर्ण समर्पण कर देता है।

इसी प्रकार Charles wesley ने अपनी प्रसिद्ध कविता "Gentle Jesus" में प्रार्थना की है :-

Gentle Jesus, meek and mild,
Look upon a little child;
Pity my simplicity,
Suffer me to come to Thee.

Wordsworth ने अपनी कविता 'My hearts leaps up' में कहा है :-

The Child is father of the man;
And I wish my days to be
Bound each to each by natural piety.

'भक्तिलहरी' में भक्तियोग के सभी आवश्यक तत्त्व बीजरूप में विद्यमान हैं। भारतीय भक्ति-परम्परा और भक्ति-काव्य की यह एक स्वर्णिम लड़ी है। वैदिक मन्त्रों तथा भगवद्गीता से निःसृत भक्ति-परम्परा दक्षिण भारत में सातवीं और आठवी शताब्दी में वैष्णव भक्ति-परम्परा में अलवर (Alvar) तथा लगभग इसी कालखण्ड में शैव भक्ति-परम्परा में नायनार (Nayanar) - इन दो धाराओं में बही। ये भक्ति काव्य के घुमक्कड़ गायक थे, जो अपने आराध्यदेव की भक्ति में लवलीन और बेसुध थे। यही भक्ति-काव्य-परम्परा बाद में बंगाल में बाउल तथा मध्यकालीन उत्तर भारत में तुलसी, सूर तथा रहस्यवादी कवि कबीर, रैदास आदि की रचनाओं में प्रकट होती है। स्वामी समर्पणानन्द जी की 'भक्तिलहरी' में भी भक्ति-काव्य-परम्परा, प्रभु प्रेम की

उत्कण्ठा, आकुलता, व्यग्रता और गहनता पाई जाती है, परन्तु यह भक्ति निराकार, निर्विकार शुद्ध सच्चिदानन्द ईश्वर के प्रति समर्पित है, जो मानव-मात्र का माता-पिता है और वात्सल्य और करुणा से परिपूर्ण है। प्रसिद्ध पाश्चात्य समालोचक Wordsworth ने कविता की परिभाषा निम्न प्रकार से की है :-

"Poetry is the spontaneous overflow of powerful feeling."

अर्थात् कविता सशक्त भावना का सहज स्वच्छन्द अतिप्रवाह है।

'भक्तिलहरी' इस कसौटी पर पूरी खरी उतरती है। यह रचना प्रबल भक्ति-भावना का सहज अविरल अतिप्रवाह है।।

पूज्यस्वामिसमर्पणानन्दसरस्वतीविरचिता

भक्तिलहरी

अलं जित्वा वादान् परिषदि निगूढार्थकथनैः
चिरं कीर्तिं लब्ध्वा पुनरपि न यातः शमसुखम्।
अये वात्सल्यानां परमनिलयानन्तकरुणा-
निधानेयं वाणी तव गुणकथायै स्पृहयति॥१॥

क्वा सा भूमिः क्वासौ फलभरनतावृक्षसरणी
क्व तत्पत्रं पुष्पं क्व नु स च गिरिः का नु लहरी।
न यत्र प्रत्युप्तं स्फुटमुपलभे नाम विमलम्
त्वदीयं भूतानां यदिह भुवि पाथेयमतुलम्॥२॥

परिश्रान्तौ बाहू स्खलति करतोऽरित्रयुगलम्
जडीभूतौ पादौ पदमपि न यातुं प्रभवतः।
इयं मध्येधारं मम समुपयाता लघुतरी
तरेद्वा मज्जेद्वा त्वयि निहितभाराः खलु वयम्॥३॥

पुरा स्वामी स्वेषां करचरणवाचामपि न यः
स एवायं भक्त्या तव किमपि जातः कलयते।
नभो गेहारामं करसुलभतारागणफलं
हिमाद्रिं वल्मीकं जलनिधिमिमं गोष्पद इति॥४॥

यथा भासा भानोः क्षणमतुलनीयां वितनुते
विनृत्यन् दूर्वाग्रे त्विषमसहनीयां हिमकणः।
तथा दिव्यं ज्योतिः स्मृतिमुपगतं ते क्षणमपि
प्रसूते प्रह्लादं हृदि कमपि वाचामविषयम्॥५॥

वदन्त्येके रोगान् कफपवनपित्तादिविकृतीः
विपाकं पापानां विगतजनुषः प्राहुरपरे।
अहन्त्वेतन्मन्ये तिमिरगहने जीवनपथे
प्रदीपानालोकप्रकिरणपटून् मे प्रियसखान्॥६॥

प्रभो! योऽयं मृत्युः परमभयदो जीवनभृताम्
श्रुतौ नामश्रावादपि सपदि कम्पं जनयति।
कथन्ते भक्तानां सृजति मधुधारां श्रवणयोः
मुखे कान्तिं दीप्तिं नयनयुगले वीरसुलभाम्॥७॥

इदं रूपं रम्यं श्रवणसुखदाता ध्वनिरयम्
सुखस्पर्शो वायुः सुरभि कुसुमं स्वादु च फलम्।
निधिं लब्धुं गुप्तं यदिह रचितं साधनमभूत्
तदेवाहं भित्तिं व्यवहितपरां हन्त! कृतवान्॥८॥

विसर्पन्तं भूमौ यदि जननि! मां दीनमवशम्
स्वभक्तं वात्सल्याद् गिरिशिखरमारोप्य नयसि।
तदा दर्पोद्रेकादहमतिमतिभ्रंशविवशः
तमुद्देशं कुर्वे निजजलधिपाताय फलकम्॥९॥

गुहायां घोरायां जलनिधितले वातिविषमे
निदध्याः स्वच्छन्दं न हि स मदुपालम्भविषयः।
इदन्त्वेकं याचे यदि वहसि सौभाग्यशिखरम्
न दौर्भाग्यं कुर्यास्त्वमिह निजभक्त्या विरहितम्॥१०॥

न चित्रं ब्रह्मेति प्रभुरिति पुनर्मातरिति वा
स्मरामि त्वां लिङ्गैस्त्रिभिरपि यदि प्रीतिविवशः।
तवालोको येषां सकृदपि गतो लोचनपथम्
न किन्तेषां लिङ्गस्मृतिरपि सहैवास्तमयते॥११॥

धनं धान्यं राज्यं रिपुपरिभवं भोगमजरम्
न किं किं याचेऽहं परमकृपणैरक्षरचयैः।
कृतघ्नस्त्वद्दत्तान् नहि खलु नयामि स्मृतिपथम्
कदाचित्पञ्चैतान् निजकरणदास्याय विषयान्॥१२॥

प्रमादादालस्यादुपहतमतिः विप्लुतगतिः
स्वदासानां दासान् प्रभुपदमुपानीय विकलः।
शरण्यं त्यक्त्वा त्वां सकलविपदामन्तकरणम्
नटँस्तेषां तन्त्रेऽगममकथनीयामिह दशाम्॥१३॥

न नृत्यं नो गीतं तव शुभगुणानां न कथनम्
न दीनानां सेवा जडवदपि चाकल्पशयनम्।
न यत्रार्त्तत्राणे विविधविपदां स्वागतविधिः
न याचे तं मोक्षं नय यदि तवाज्ञैव भवति॥१४॥

विना लोभं लाभं यदिह सकलं विश्वमवसि
प्रयासं लोकार्थेऽनवरतमनन्तञ्च वहसि।
ममाप्येतां शक्तिं वितर भगवन्नित्यमधुराम्
तवेदं वात्सल्यं यदि मयि ततो जन्म सफलम्॥१५॥

यदा दर्शं दर्शं निजमलिनकर्मावलिमहम्
घृणामात्मन्येव स्वयमिह दधे नैव करुणाम्।
न दत्तो निर्वासः कथमिह ममेत्यत्र फलितम्
स्वराज्यस्यान्तं त्वं यदिह विवशो नैव लभसे॥१६॥

अहो! वृक्षस्याग्रे कुसुममतिरम्यं किमु भवान्
न मां दत्ते द्रष्टुं मुहुरिह शिरः सन्नमयति।
बहु क्रुद्धं बुद्धं नहि पुनरहो मूढमतिना
कथं पादस्यान्ते लुठति मम चिन्तामणिरयम्॥१७॥

मम श्रुत्वा काव्यं यदि मुदमुपेयुः सहृदयाः
कथं ब्रूयां न स्यान्मम सुखकरोऽयं व्यतिकरः।
इदं त्वन्यत्किञ्चिद्यदि नटति रोमावलिरियम्
यदास्मिन् व्यासङ्गे तव गुणकथा स्फूर्त्तिमयते॥१८॥

जनाक्रन्दैः शून्ये क्वचिदपि गिरौ निर्झरतटे
यदिन्दोर्निष्यन्दे नयति सितिमानं त्रिभुवनम्।
विना हेतुं नेत्रे सततजलधारां प्रवहतः
स कोऽप्यानन्दोऽयं नहि तनुषु मानं व्रजति यः॥१९॥

निशीथे विश्रब्धं शयनसुखमग्नेऽखिलजने
इमे केचिद्दुःखैः परवशजने वत्सलतया।
यदस्रान्मुञ्चन्ति प्रतिरजनि मुक्तैर्हिमकणैः
स्वयं कर्मण्यस्मिन् त्वमिह जननीमान् विनयसे॥२०॥

निमग्ना स्वच्छन्दं भवति परमानन्दजलधौ
विहारायोन्मग्ना सदसि विदुषां लोभविवशा।
इमान् यानामुञ्चे निजरसनलग्नान् रसकणान्
इयं मुग्धा वाणी त इह खलु काव्येति भणिता॥२१॥

प्रतीपं कल्याणं तव शिशुरयं धारयति नः
परं प्रत्यक्षोऽयं विधिरपि न शक्योऽपलपितुम्।
न सन्देहः क्रीडारसमनुभवत्वेष सततम्
करैस्तप्तैः किन्तु प्रतिदिनमयन्नः प्रदहति॥२२॥

वयं धारापातैः शिशिरशिशिरैर्भूतलगृहे
सुशीतैरागारैर्व्यजनपवनैः कृत्रिमहिमैः।
स्वजीवं निर्वोढुं यदि कथमपि स्याम सफलाः
कथन्त्वेते कुर्युः खगमृगगणा नान्यगतयः॥२३॥

हृते छत्रे पत्रैर्विरहिततनौ पादपगणे
वदन्तः स्वं भावं हृदयगतमार्त्तैः स्वनयनैः।
नदीतीरे दूरे कथमपि हृता गोपशिशुभिः
भजन्ते रोमन्थं प्रविरलजले ग्राम्यपशवः॥२४॥

य एते दातारो यवयवसगोधूमपयसाम्
सुषिक्ताः प्रस्वेदैर्विरलवसनाश्छत्रविमुखाः।
सुतप्तायां भूमौ क्वचिदपि पदत्राणरहिताः
किमेषान्तप्तानां सततपरितापः श्रमफलम्॥२५॥

सरः शोषन्नीतं लुठति शफरी तोयविरहे
प्रयाता पिङ्गत्वं हरितवसना शाद्वलमही।
नभो भूमिप्रायं कृतमविरलैर्घोरपवनैः
इयं चेत् क्रीडा ते कथय ननु रोषः किमु भवेत्॥२६॥

प्रजानामाक्रोशं करुणमिह मन्ये श्रुतवती
त्वमास्ये तस्याधाः प्रचलकुशिशोर्मेचकमसिम्।
स एवायं मेघो घनतिमिरलेपाकृतिधरः
रवेरश्रून्मिश्रः स्त्रवति नु सहस्त्राणि सरिताम्॥२७॥

त्वमेवाक्रन्दानां ध्वनिमसहमाना तनुभृताम्
पयोदव्याजेन स्वमुखमथवाऽवृत्य सविता।
तदेतन्निष्ठ्यूतं बहुजलभरैः नीरदपटैः
क्रमात्ते कारुण्यं लवणयुतवारां निधिरभूत्॥२८॥

प्रवाहे शालीनामसितघनमालाञ्चिततनौ
बकालीव्यालीना विमलसितमुक्तावलिरुचिः।
क्वचित्कान्तिं चामीकरजयनशीलां धृतवती
करैर्मिश्रा भानोर्गमयति मनः कामपि दशाम्॥२९॥

यदा ते वात्सल्यं बहुजलदधारापरिणतम्
सहस्त्रैर्बिन्दूनां जगदिदमशेषं स्नपयति।
तदा ते भक्तानां जननि मधुरा जन्म लभते
तवाङ्के सुप्तानां परिणतिरहो कापि मनसः॥३०॥

न यामेषा वाणी कथयितुमलं किन्तु सकलम्
जगद् व्याप्तौ यस्याः प्रयतजलधारैरभिनवैः।
नदीपूरं याति प्रणमति तरुर्नृत्यति शिखी
क्षिपन्नूर्ध्वं बाहूं नटति करतालैः शिशुजनः॥३१॥

पुरा यः सन्तापं सकलभुवनानामजनयत्
चतुर्मासस्यान्ते बहुविधजलैः क्षालितमुखः।
शिशुः सोऽयं मातस्तव विनयशिक्षामुपगतः
विहायोग्रं रूपं स्मितमधुरकान्तिं वितनुते॥३२॥

जडोऽहं काष्ठत्वं मयि भवतु कारुण्यजलधे
चमत्कारस्तेऽयं यदिह लघुता गौरवमभूत्।
अतो ह्यानन्दाद्रेरधिशिखरमेषा प्रवहति
प्रसह्याधीनं मां गिरिसमशिखा भक्तिलहरी॥३३॥

अरित्रे नौदण्डस्तरणिरखिलं दारुविकृतम्
तरेदेतत्सर्वं सहजलघुभावस्य वशजम्।
सतीर्थ्ये मीनानां मयि न भयमेतन्नु विषमम्
कमालम्बं यायात्तरणिविकलो यात्रिकजनः॥३४॥

भुजालम्बं केचिद्ददति जलमग्नाय जनुषे
नयन्त्यन्ये शिल्पैस्तरणिमिह भग्नां सुनवताम्।
यदेतान् कल्लोलान् गिरिसमशिखान्नौकयसि नः
चमत्कारः सोऽयं तव निपुणवाचो न विषयः॥३५॥

नभस्तेजो लब्ध्वा जयमिदमनीकञ्च मरुताम्
मुदालिङ्गद्भूमेः कुसुमसुभगं मण्डलमिदम्।
मनोऽस्माकं ब्रह्माँस्त्वयि निहितभारं पुलकितम्
वसन्ते सम्प्राप्ते नटतु सकला क्लीबपरिषत्॥३६॥

❁ इति पूज्यस्वामिसमर्पणानन्दसरस्वतीविरचिता भक्तिलहरी समाप्ता ❁

भक्तिभावयुता भक्तिलहरीयं मनोहरा।
भक्तानां तापसन्तापं हृदा गीता ह्यपोहति॥
न कं श्रीबुद्धदेवस्य विद्यामार्तण्डमण्डिनः।
प्रीणातीयं कृतिः पुण्या मुखतां कर्णतां गता॥

श्रीबुद्धदेवबुधमण्डितपण्डितानाम्
आनन्ददा हृदि सदानुपमा सुपुण्या।
सेयं हि भक्तिलहरी प्रभुभक्तिभावा
गीता श्रुता सकलतापहरा नराणाम्॥

सुखयति जगदम्बानन्तवात्सल्यधारा
अतिरमयति भक्तान् ईशभक्तिप्रसारा।
प्रभुगुणगणसारा भक्तिकल्लोलवारा
श्रुतिगतिकृतिरेषा बुद्धदेवप्रणीता॥

पूज्य स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती

(विद्यामार्तण्ड पण्डित बुद्धदेव विद्यालङ्कार)

द्वारा प्रणीत

छात्रोपयोगिनी टीकासहित

भक्तिलहरी

अलं जित्वा वादान् परिषदि निगूढार्थकथनैः
चिरं कीर्त्तिं लब्ध्वा पुनरपि न यातः शमसुखम्।
अये वात्सल्यानां परमनिलयानन्तकरुणा-
निधानेयं वाणी तव गुणकथायै स्पृहयति॥१॥

अन्वयः

परिषदि वादान् जित्वा अलम्, निगूढार्थकथनैः चिरं कीर्त्तिं लब्ध्वा (अपि अलम्)। पुनः अपि शमसुखं न यातः। अये वात्सल्यानां परमनिलय! अनन्तकरुणानिधान! इयं वाणी तव गुणकथायै स्पृहयति॥१॥

शब्दार्थः

परिषदि= सभा में, **वादान्**= वाद-विवादों को, **जित्वा**= जीतने से, **अलम्**= बस, **निगूढार्थकथनैः**= वेदादिशास्त्रों के गम्भीर अर्थों के व्याख्यानों से, **चिरम्**= दीर्घकाल तक, **कीर्त्तिम्**= यश को, **लब्ध्वा**= पाकर, (अपि अलम्= भी बस) **पुनः अपि**= फिर भी, **शमसुखम्**= शान्ति-सुख, **न**= नहीं, **यातः**= प्राप्त कर सका, **अये**= हे, **वात्सल्यानाम्**= वात्सल्य-स्नेह के, **परमनिलय**= परमधाम, **अनन्तकरुणानिधान**= अनन्त करुणा के सागर, **इयम्**= यह, **वाणी**= वाणी, **तव**= तुम्हारा, **गुणकथायै**= गुणकीर्त्तन करने के लिये, **स्पृहयति**= उत्कण्ठित हो रही है॥१॥ (अत्र सर्वत्र काव्ये शिखरिणीवृत्तम्। तदुक्तम्- रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी।)

भाषार्थः

बस, बहुत वाद-विवाद जीत लिये। सभा में वेदादिशास्त्रों के गम्भीर अर्थों को कह-कहकर चिरकालीन यश भी प्राप्त कर लिया। लेकिन, फिर भी मुझे शान्ति-सुख नहीं मिल सका। हे वात्सल्य के परमधाम! और अनन्त करुणा के सागर परमेश्वर! अब तो यह वाणी तेरा गुणकीर्त्तन करना चाहती है॥१॥

क्व सा भूमिः क्वासौ फलभरनता वृक्षसरणी
क्व तत्पत्रं पुष्पं क्व नु स च गिरिः का नु लहरी।
न यत्र प्रत्युप्तं स्फुटमुपलभे नाम विमलं
त्वदीयं भूतानां यदिह भुवि पाथेयमतुलम्॥२॥

अन्वयः

सा भूमिः क्व? असौ फलभरनता वृक्षसरणी क्व? तत् पत्रं पुष्पं क्व? सः च गिरिः नु क्व? लहरी नु का? यत्र प्रत्युप्तं त्वदीयं विमलं नाम स्फुटं न उपलभे, यत् इह भुवि भूतानाम् अतुलं पाथेयं (वर्त्तते)॥२॥

शब्दार्थः

सा= वह, **भूमिः**= धरती, **क्व**= कहाँ, **असौ**= वह, **फलभरनता**= फलों के भार से झुकी, **वृक्षसरणी**= वृक्षों की पंक्ति, **क्व**= कहाँ, **तत्**= वह, **पत्रम्**= पत्ता, **पुष्पम्**= फूल, **क्व**= कहाँ, **सः**= वह, **च**= और, **गिरिः**= पर्वत, **क्व नु**= कहाँ है, **का नु**= कौन-सी, **लहरी**= जलतरंग, **यत्र**= जहाँ, **प्रत्युप्तम्**= उत्कीर्ण, **त्वदीयम्**= तुम्हारे, **विमलम्**= पवित्र, **नाम**= नाम को, **स्फुटम्**= स्पष्ट, **न**= नहीं, **उपलभे**= पाता हूँ, **यत्**= जो, **इह भुवि**= इस संसार में, **भूतानाम्**= प्राणियों का, **अतुलम्**= अतुलनीय, **पाथेयम्**= पथाहार, (**वर्त्तते**= है)॥२॥

भाषार्थः

हे प्रभो! वह धरती कहाँ? कहाँ है वह फलभार से झुकी तरुश्रेणी? वे फूल और पत्ते कहाँ हैं? वह कौन-सा पर्वत है या कौन-सी लहर है? जहाँ मुझे तेरा पवित्र नाम स्पष्ट लिखा नहीं मिलता है, जो इस संसार के प्राणियों का अनुपम पाथेय है॥२॥

परिश्रान्तौ बाहू स्खलति करतोऽरित्रयुगलम्
जडीभूतौ पादौ पदमपि न यातुं प्रभवतः।
इयं मध्येधारं मम समुपयाता लघुतरी
तरेद्वा मज्जेद्वा त्वयि निहितभाराः खलु वयम्॥३॥

अन्वयः

बाहू परिश्रान्तौ, करतः अरित्रयुगलं स्खलति, जडीभूतौ पादौ पदम् अपि न यातुं प्रभवतः। इयं मम लघुतरी मध्येधारं समुपयाता; (इयं) तरेत् वा मज्जेत् वा वयं खलु त्वयि निहितभाराः॥३॥

शब्दार्थः

बाहू= दोनों भुजाएँ, **परिश्रान्तौ**= बहुत थक गयी हैं, **करतः**= हाथ से, **अरित्रयुगलम्**= पतवार की जोड़ी, **स्खलति**= छूट रही है, **जडीभूतौ**= जकड़े हुए, **पादौ**= पाँव, **पदम् अपि**= डगभर भी, **न**= नहीं, **यातुम्**= चलने में, **प्रभवतः**= समर्थ हैं, **इयम्**= यह, **मम**= मेरी, **लघुतरी**= छोटी-सी नौका, **मध्येधारम्**= मझधार में, **समुपयाता**= पहुँच गयी है, (इयम्= यह) **तरेत्**= पार लगे, **वा**= या, **मज्जेत्**= डूब जाये, **वयम्**= हमने, **खलु**= निश्चय ही, **त्वयि**= तुम्हारे ऊपर, **निहितभाराः**= सब भार डाल दिया है ॥३॥

भाषार्थः

प्रभो! मेरी दोनों भुजाएँ थककर चूर-चूर हो गयी हैं और हाथ से पतवार खिसक रही हैं, पाँव ऐसे जकड़ गये हैं कि पग-भर भी आगे नहीं बढ़ सकते। यह मेरी छोटी-सी नैया मझधार में आ पड़ी है, अब यह किनारे लगे या डूब जाय; मैंने तो सब भार तुझ पर छोड़ दिया है॥३॥

पुरा स्वामी स्वेषां करचरणवाचामपि न यः
स एवायं भक्त्या तव किमपि जातः कलयते।
नभो गेहारामं करसुलभतारागणफलम्
हिमाद्रिं वल्मीकं जलनिधिमिमं गोष्पद इति॥४॥

अन्वयः

पुरा यः स्वेषां करचरणवाचाम् अपि न स्वामी, स एव अयं तव भक्त्या किमपि जातः नभः करसुलभतारागणफलं गेहारामम्, हिमाद्रिं वल्मीकम्, इमं जलनिधिं गोष्पद इति कलयते॥४॥

शब्दार्थः

पुरा= पहले, **यः**= जो, **स्वेषाम्**= अपने ही, **करचरणवाचाम्**= हाथ, पाँव और वाणी का, **अपि**= भी, **न**= नहीं, **स्वामी**= स्वामी, **सः**= वह, **एव**= ही, **अयम्**= यह, **तव**= तेरी, **भक्त्या**= भक्ति से, **किमपि**= कुछ, **जातः**= हो गया, **नभः**= आकाश को, **करसुलभतारागणफलम्**= हाथों से सुलभ्य तारागणरूपी फल से युक्त, **गेहारामम्**= गृहवाटिका, **हिमाद्रिम्**= हिमालय पर्वत को, **वल्मीकम्**= एक बाम्बी, **इमम्**= इस, **जलनिधिम्**= समुद्र को, **गोष्पदः**= स्वल्प जल वाला गोखुर, **इति**= ऐसा, **कलयते**= समझने लगा है॥४॥

भाषार्थः

हे प्रभो! जिसका पहले अपने ही हाथ, पाँव और वाणी पर वश नहीं था, वही अब तेरी भक्ति से कुछ और हो गया है, और आकाश को गृहवाटिका, तारों को हाथों से प्राप्त करने योग्य फल, उत्तुङ्ग हिमालय को सामान्य बाम्बी और समुद्र को स्वल्प जल वाला गोखुर के समान समझने लगा है॥४॥

यथा भासा भानोः क्षणमतुलनीयां वितनुते
विनृत्यन् दूर्वाग्रे त्विषमसहनीयां हिमकणः।
तथा दिव्यं ज्योतिः स्मृतिमुपगतं ते क्षणमपि
प्रसूते प्रह्लादं हृदि कमपि वाचामविषयम्।।५।।

अन्वयः

यथा दूर्वाग्रे विनृत्यन् हिमकणः भानोः भासा क्षणम् अतुलनीयाम् असहनीयां त्विषं वितनुते, तथा क्षणम् अपि स्मृतिम् उपगतं ते दिव्यं ज्योतिः हृदि कमपि वाचाम् अविषयं प्रह्लादं प्रसूते।।५।।

शब्दार्थः

यथा= जिस प्रकार, **दूर्वाग्रे**= दूब के अग्रभाग में, **विनृत्यन्**= झूम रहे, **हिमकणः**= ओस की बूँद, **भानोः**= सूर्य के, **भासा**= प्रकाश से, **क्षणम्**= क्षणभर के लिये, **अतुलनीयाम्**= अनुपम, **असहनीयाम्**= चौंधियाने वाली, **त्विषम्**= चमक, **वितनुते**= फैलाती है, **तथा**= उसी प्रकार, **क्षणम्**= क्षणमात्र के लिये, **अपि**= भी, **स्मृतिम्**= स्मृति में, **उपगतम्**= आयी, **ते**= तेरी, **दिव्यम्**= दिव्य, **ज्योतिः**= ज्योति, **हृदि**= हृदय में, **कमपि**= कुछ, **वाचाम् अविषयम्**= शब्दातीत **प्रह्लादम्**= आनन्द को, **प्रसूते**= उत्पन्न करती है।।५।।

भाषार्थः

जैसे दूब के शीर्ष पर नृत्य करती हुई सूर्य के प्रकाश से जगमगाती ओस की बूँद क्षण भर के लिए चौंधियाने वाली चमक फैलाती है, वैसे ही क्षणभर के लिये भी मेरे स्मृति पटल पर आयी तेरी दिव्यज्योति हृदय में अनिर्वचनीय आनन्द को उत्पन्न करती है।।५।।

वदन्त्येके रोगान् कफपवनपित्तादिविकृतीः
विपाकं पापानां विगतजनुषः प्राहुरपरे।
अहन्त्वेतन्मन्ये तिमिरगहने जीवनपथे
प्रदीपानालोकप्रकिरणपटून् मे प्रियसखान्॥६॥

अन्वयः

एके रोगान् कफपवनपित्तादिविकृतीः वदन्ति, अपरे विगतजनुषः पापानां विपाकं प्राहुः। अहं तु तिमिरगहने जीवनपथे एतान् आलोकप्रकिरणपटून् प्रदीपान् मे प्रियसखान् मन्ये॥६॥

शब्दार्थः

एके= कई लोग, **रोगान्**= रोगों को, **कफपवनपित्तादिविकृतीः**= कफ-वात-पित्त के विकार (हैं, ऐसा) **वदन्ति**= कहते हैं, **अपरे**= और कई लोग, **विगतजनुषः**= पिछले जन्म के, **पापानाम्**= पापों का, **विपाकम्**= फल, **प्राहुः**= कहते हैं। **अहम्**= मैं, **तु**= तो, **एतान्**= इन्हें, **तिमिरगहने**= गहन अन्धकारमय, **जीवनपथे**= जीवन-मार्ग पर, **आलोकप्रकिरणपटून्**= प्रकाश फैलाने में समर्थ, **प्रदीपान्**= दीपकस्वरूप, **मे**= अपने, **प्रियसखान्**= प्रियबन्धु, **मन्ये**= समझता हूँ॥६॥

भाषार्थः

कई लोग रोगों को वात, पित्त और कफ का विकार समझते हैं, तो और कई पूर्वजन्म के पापों का फल बतलाते हैं; किन्तु मैं तो इन्हें गहन अन्धकारमय जीवन-मार्ग में प्रकाश फैलाने वाले दीपकस्वरूप अपने प्रिय मित्र समझता हूँ॥६॥

प्रभो योऽयं मृत्युः परमभयदो जीवनभृताम्
श्रुतौ नामश्रावादपि सपदि कम्पं जनयति।
कथं ते भक्तानां सृजति मधुधारां श्रवणयोः
मुखे कान्तिं दीप्तिं नयनयुगले वीरसुलभाम्।।७।।

अन्वयः

प्रभो! अयं यः मृत्युः जीवनभृतां परमभयदः श्रुतौ नामश्रावात् अपि सपदि कम्पं जनयति। कथं ते भक्तानां श्रवणयोः मधुधाराम्, मुखे कान्तिम्, नयनयुगले वीरसुलभां दीप्तिं सृजति।।७।।

शब्दार्थः

प्रभो= हे प्रभो!, **अयम्**= यह, **यः**= जो, **मृत्युः**= मृत्यु, **जीवनभृताम्**= प्राणधारियों के लिये, **परमभयदः**= अत्यन्त भयकारक है, **श्रुतौ**= कान में, **नामश्रावात्**= नाम के सुनाई देने से, **अपि**= भी, **सपदि**= तत्काल, **कम्पम्**= कम्पन को, **जनयति**= उत्पन्न करती है, **कथम्**= कैसे, **ते**= तुम्हारे, **भक्तानाम्**= भक्तों के, **श्रवणयोः**= कानों में, **मधुधाराम्**= आनन्दमय मधुरता की धारा को, **मुखे**= चेहरे पर, **कान्तिम्**= औज्ज्वल्य को, **नयनयुगले**= नेत्रों में, **वीरसुलभाम्**= वीरोचित, **दीप्तिम्**= ज्योति को, **सृजति**= उत्पन्न करती है।।७।।

भाषार्थः

हे प्रभो! यह जो मृत्यु प्राणियों के लिए अत्यन्त भयप्रद है और नाम के श्रवण-मात्र से ही तत्क्षण कंपा देती है, वही मृत्यु न जाने क्यों तुम्हारे भक्तों के कानों में मधुरता की धारा बहा देती है, मुखमण्डल पर उज्ज्वल कान्ति और नेत्रों में वीरजनोचित ज्योति जगा देती है।।७।।

इदं रूपं रम्यं श्रवणसुखदाता ध्वनिरयम्
सुखस्पर्शो वायुः सुरभि कुसुमं स्वादु च फलम्।
निधिं लब्धुं गुप्तं यदिह रचितं साधनमभूत्
तदेवाहं भित्तिं व्यवहितपरां हन्त! कृतवान्॥८॥

अन्वयः

इदं रम्यं रूपम्, अयं श्रवणसुखदाता ध्वनिः, सुखस्पर्शः वायुः, सुरभि कुसुमं स्वादु च फलम्। यत् इह गुप्तं निधिं लब्धुं साधनं रचितम् अभूत्। हन्त! अहं तत् एव व्यवहितपरां भित्तिं कृतवान्॥८॥

शब्दार्थः

इदम्= यह, **रम्यम्**= सुन्दर, **रूपम्**= रूप, **अयम्**= यह, **श्रवणसुखदाता**= कानों में सुख देने वाली, **ध्वनिः**= ध्वनि, **सुखस्पर्शः**= स्पर्श-सुखकारक, **वायुः**= पवन, **सुरभि**= सुगन्धित, **कुसुमम्**= फूल, **च**= और, **स्वादु**= स्वादिष्ट, **फलम्**= फल, **यत्**= जो, **इह**= इस संसार में, **गुप्तम्**= अदृश्य, **निधिम्**= कोश को, **लब्धुम्**= प्राप्त करने के लिए, **साधनम्**= साधन, **रचितम्**= बनाया हुआ, **अभूत्**= था, **हन्त!**= दुःख की बात है कि, **अहम्**= मैंने, **तत्**= उसे, **एव**= ही, **व्यवहितपराम्**= व्यवधान करने वाली, **भित्तिम्**= दीवार, **कृतवान्**= बना दी॥८॥

भाषार्थः

हे प्रभो! यह रमणीय रूप, कानों को सुख देने वाली मधुर ध्वनि, स्पर्श-सुखमय वायु, सुगन्धित फूल और स्वादिष्ट फल, सब कुछ तो गुप्त अनमोल खजाने की प्राप्ति के लिये साधन ही था। किन्तु हाय! बड़े दुःख की बात है कि मैंने उसी को व्यवधान उत्पन्न करने वाली दीवार बना डाला॥८॥

विसर्पन्तं भूमौ यदि जननि! मां दीनमवशम्
स्वभक्तं वात्सल्याद् गिरिशिखरमारोप्य नयसि।
तदा दर्पोद्रेकादहमतिमतिभ्रंशविवशः
तमुद्देशं कुर्वे निजजलधिपाताय फलकम्॥९॥

अन्वयः

जननि! भूमौ विसर्पन्तं दीनम् अवशं मां स्वभक्तं यदि वात्सल्यात् गिरिशिखरम् आरोप्य नयसि। तदा दर्पोद्रेकात् अतिमतिभ्रंशविवशः अहं तम् उद्देशं निजजलधिपाताय फलकं कुर्वे॥९॥

शब्दार्थः

जननि!= मातः! **भूमौ**= भूमि पर, **विसर्पन्तम्**= रेंगते हुए, **दीनम्**= दुःखित, **अवशम्**= विवश, **माम्**= मुझे, **स्वभक्तम्**= अपने भक्त को, **यदि**= यदि, **वात्सल्यात्**= स्नेहवशात्, **गिरिशिखरम्**= पर्वत के शिखर पर, **आरोप्य**= चढ़ाकर, **नयसि**= पहुंचा देती हो, **तदा**= तो, **दर्पोद्रेकात्**= अतिशय घमण्ड के कारण, **अतिमतिभ्रंशविवशः**= अत्यन्त मतिविभ्रंश से विवश होकर, **अहम्**= मैं, **तम्**= उस, **उद्देशम्**= महत्प्रयोजन को, **निजजलधिपाताय**= स्वयं के समुद्र में गिरने के लिये, **फलकम्**= तख्ता, **कुर्वे**= बना लेता हूँ॥९॥

भाषार्थः

हे जननि! धरती पर रेंगते हुए दीन-हीन और विवश मुझ भक्त को अगर तू वात्सल्य से पर्वत-शिखर पर चढ़ाकर पहुँचा देती है, तो मैं अतिशय गर्व से मतिभ्रष्ट होकर तेरे उस उद्देश को स्वयं के समुद्र में गिरने के लिये तख्ता बना लेता हूँ ॥९॥

गुहायां घोरायां जलनिधितले वातिविषमे
निदध्याः स्वच्छन्दं नहि स मदुपालम्भविषयः।
इदन्त्वेकं याचे यदि वहसि सौभाग्यशिखरम्
न दौर्भाग्यं कुर्यास्त्वमिह निजभक्त्या विरहितम्॥१०॥

अन्वयः

घोरायां गुहायां वा अतिविषमे जलनिधितले (मां) स्वच्छन्दं निदध्याः स मदुपालम्भविषयः नहि। इदम् तु एकं याचे यदि त्वं सौभाग्यशिखरं वहसि निजभक्त्या विरहितं दौर्भाग्यं न कुर्याः॥१०॥

शब्दार्थः

घोरायाम्= भयंकर, **गुहायाम्**= गुफा में, **वा**= अथवा, **अतिविषमे**= अत्यन्त विषम, **जलनिधितले**= समुद्रतल में, **स्वच्छन्दम्**= अपनी इच्छा के अनुसार (जहाँ भी), **निदध्याः**= रखो, **सः**= वह, **मदुपालम्भविषयः**= मेरे उलाहने का विषय, **नहि**= नहीं है, **तु**= किन्तु, **इदम्**= यह, **एकम्**= एक, **याचे**= याचना करता हूँ कि, **यदि**= अगर, **सौभाग्यशिखरम्**= सौभाग्य के शिखर पर, **वहसि**= पहुँचाती हो (तो), **निजभक्त्या**= अपनी भक्ति से, **विरहितम्**= विमुख, **दौर्भाग्यम्**= दौर्भाग्य को, **न**= नहीं, **कुर्याः**= करो॥१०॥

भाषार्थः

हे मातः! या तो भयङ्कर गिरिकन्दरा के अन्दर या फिर अतिविषम समुद्र के अन्तस्तल में अपनी इच्छानुसार (मुझे) जहाँ कहीं भी रखो, इसमें मुझे कुछ भी आपत्ति नहीं; किन्तु इतनी प्रार्थना है कि यदि मुझे सौभाग्य के शिखर पर पहुँचाती हो तो अपनी भक्ति से दूर कर देने का जो दुर्भाग्य है, उसमें न डाल देना॥१०॥

न चित्रं ब्रह्मेति प्रभुरिति पुनर्मातरिति वा
स्मरामि त्वां लिङ्गैस्त्रिभिरपि यदि प्रीतिविवशः।
तवालोको येषां सकृदपि गतो लोचनपथम्
न किन्तेषां लिङ्गस्मृतिरपि सहैवास्तमयते॥११॥

अन्वयः

यदि प्रीतिविवशः ब्रह्म इति प्रभुः इति पुनः मातः इति त्रिभिः लिङ्गैः अपि त्वां स्मरामि न चित्रम्। तव आलोकः सकृत् अपि येषां लोचनपथं गतः किं तेषां लिङ्गस्मृतिः अपि सह एव अस्तं न अयते॥११॥

शब्दार्थः

यदि= यदि, **प्रीतिविवशः**= प्रेम के वशीभूत होकर, **ब्रह्म**= ब्रह्म, **इति**= इस प्रकार, **प्रभुः**= प्रभु, **इति**= इस प्रकार, **पुनः**= और भी, **मातः**= हे मातः, **इति**= इस प्रकार, **त्रिभिः**= तीनों, **लिङ्गैः**= लिङ्गों से, **अपि**= भी, **त्वाम्**= तुझे, **स्मरामि**= स्मरण करता हूँ तो, **चित्रम्**= विस्मय की बात, **न**= नहीं है, **तव**= तेरा, **आलोकः**= दिव्यप्रकाश, **सकृत्**= एक बार, **अपि**= भी, **येषाम्**= जिनके, **लोचनपथम्**= दृष्टिपथ में, **गतः**= आ जाता है, **किम्**= क्या, **तेषाम्**= उनकी, **लिङ्गस्मृतिः**= लिङ्गभेद की स्मृति, **अपि**= भी, **सह**= साथ, **एव**= ही, **अस्तम्**= समाप्ति को, **न**= नहीं, **अयते**= प्राप्त होती॥११॥

भाषार्थः

हे प्रभो! यद्यपि मैं हे ब्रह्मन्, हे प्रभो, हे मातः कहकर तीनों लिङ्गों में तुम्हें स्मरण करता हूँ, तो भी इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है; क्योंकि जिन्हें तुम्हारी दिव्य ज्योति का एक बार भी दर्शन हो जाता है, तो उनका लिङ्गसम्बन्धी विवेक भी क्या उसके साथ-साथ ही समाप्त नहीं हो जाता?॥११॥

धनं धान्यं राज्यं रिपुपरिभवं भोगमजरम्
न किं किं याचेऽहं परमकृपणैरक्षरचयैः।
कृतघ्नस्त्वद्दत्तान् नहि खलु नयामि स्मृतिपथम्
कदाचित् पञ्चैतान् निजकरणदास्याय विषयान्॥१२॥

अन्वयः

अहं परमकृपणैः अक्षरचयैः धनं धान्यं राज्यं रिपुपरिभवम् अजरं भोगं किं किं न याचे? कृतघ्नः खलु कदाचित् त्वद्दत्तान् निजकरणदास्याय पञ्च एतान् विषयान् स्मृतिपथं नहि नयामि॥१२॥

शब्दार्थः

अहम्= मैं, **परमकृपणैः**= अत्यन्त दीनतापूर्ण, **अक्षरचयैः**= शब्दों से, **धनम्**= धन, **धान्यम्**= धान्य, **राज्यम्**= राज्य, **रिपुपरिभवम्**= शत्रु की पराजय, **अजरम्**= अनश्वर, **भोगम्**= सुख-भोग, **किं किम्**= क्या-क्या, **न**= नहीं, **याचे**= मांगता हूं, **कृतघ्नः**= कृतघ्न होकर, **खलु**= सचमुच, **कदाचित्**= कभी भी, **त्वद्दत्तान्**= तुम्हारे दिये हुए, **निजकरणदास्याय**= अपने इन्द्रियों के दासत्व के लिये, **एतान्**= इन, **पञ्च**= पाँच, **विषयान्**= विषयों को, **स्मृतिपथम्**= स्मरण में, **नहि**= नहीं, **नयामि**= लाता हूँ॥१२॥

भाषार्थः

हे प्रभो! मैं अपनी अत्यन्त दीनतापूर्ण वाणी से धन, धान्य, राज्य, शत्रुओं का पराभव, अक्षय भोगैश्वर्य आदि क्या-क्या नहीं मांगता हूँ; किन्तु कृतघ्नतावश मैं कभी भी पांच ज्ञानेन्द्रियों की सेवा करने के लिए तेरे द्वारा दिये रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द इन पांच विषयों को स्मरण भी नहीं करता॥१२॥

प्रमादादालस्यादुपहतमतिः विप्लुतगतिः
स्वदासानां दासान् प्रभुपदमुपानीय विकलः।
शरण्यं त्यक्त्वा त्वां सकलविपदामन्तकरणम्
नटँस्तेषां तन्त्रेऽगममकथनीयामिह दशाम्॥१३॥

अन्वयः

प्रमादात् आलस्यात् उपहतमतिः विप्लुतगतिः (अहम्) स्वदासानां दासान् प्रभुपदम् उपानीय सकलविपदाम् अन्तकरणं शरण्यं त्वां त्यक्त्वा तेषां तन्त्रे नटन् विकलः इह अकथनीयां दशाम् अगमम्॥१३॥

शब्दार्थः

प्रमादात्= प्रमाद के कारण, **आलस्यात्**= आलस्य के कारण, **उपहतमतिः**= बुद्धिभ्रष्ट होकर, **विप्लुतगतिः**= विषमगति, (**अहम्**= मैं), **स्वदासानाम्**= अपने ही दासों के, **दासान्**= दासों को, **प्रभुपदम्**= प्रभुशब्द से, **उपानीय**= पुकार कर, **सकलविपदाम्**= समस्त विपदाओं के, **अन्तकरणम्**= अन्त करने वाले, **शरण्यम्**= शरण के योग्य, **त्वाम्**= तुझे, **त्यक्त्वा**= त्यागकर, **तेषाम्**= उनके, **तन्त्रे**= अधीनता में, **नटन्**= नाचता हुआ, **विकलः**= आतुर, **इह**= इस, **अकथनीयाम्**= अकथनीय, **दशाम्**= दुर्दशा को, **अगमम्**= प्राप्त हुआ हूँ॥१३॥

भाषार्थः

हे प्रभो! प्रमाद के कारण मतिभ्रष्ट और आलस्य के कारण गतिभ्रष्ट होकर समस्त विपदाओं का विनाश करने वाले एक मात्र शरण के योग्य तुम्हें छोड़कर अपने दासों के भी दासों को अपने 'प्रभु' शब्द से पुकारते हुए उनके अधीन नाचता हुआ त्रस्त होकर मैं इस अकथनीय दुर्दशा में पड़ गया हूँ॥१३॥

न नृत्यं नो गीतं तव शुभगुणानां न कथनम्
न दीनानां सेवा जडवदपि चाकल्पशयनम्।
न यत्रार्त्तत्राणे विविधविपदां स्वागतविधिः
न याचे तं मोक्षं नय यदि तवाज्ञैव भवति॥१४॥

अन्वयः

यत्र न नृत्यं, नो गीतं, तव शुभगुणानां न कथनं, न दीनानां सेवा, आर्त्तत्राणे न विविधविपदां स्वागतविधिः, अपि च जडवत् आकल्पशयनम्, तं मोक्षं न याचे। यदि तव आज्ञा एव भवति, नय॥१४॥

शब्दार्थः

यत्र= जहाँ, **नृत्यम्**= नृत्य, **न**= नहीं, **गीतम्**= संगीत, **नो**= नहीं, **तव**= तेरे, **शुभगुणानाम्**= पवित्र गुणों का, **कथनम्**= कीर्त्तन, **न**= नहीं, **दीनानाम्**= दीन-दुःखियों की, **सेवा**= सेवा, **न**= नहीं, **आर्त्तत्राणे**= दीन-दुःखियों की रक्षा करने में, **विविध विपदाम्**= नाना प्रकार की विपदाओं का, **स्वागतविधिः**= स्वागत-क्रिया, **न**= नहीं होती, **अपि च**= और भी, **जडवत्**= जड़ या निर्जीव जैसे, **आकल्पशयनम्**= कल्प पर्यन्त सोना, **तम्**= उस, **मोक्षम्**= मोक्ष को, **न**= नहीं, **याचे**= मांगता हूँ, **यदि**= अगर, **तव**= तुम्हारी, **आज्ञा**= आदेश, **एव**= ही, **भवति**= हो तो, **नय**= पहुंचा दो॥१४॥

भाषार्थः

हे प्रभो! जहाँ नृत्य नहीं, संगीत नहीं, तुम्हारे पवित्र गुणों का कीर्त्तन नहीं, दीन-दुःखियों की सेवा नहीं, आर्त्तप्राणियों की रक्षा करने में विभिन्न विपदाओं का स्वागत करना न होता हो, और जहाँ केवल कल्पों पर्यन्त जड़तुल्य पड़े रहना ही होता है, वैसे मोक्ष की मैं याचना नहीं करता। हाँ, अगर तुम्हारी आज्ञा हो तो भले ही वहाँ पहुँचा दो॥१४॥

विना लोभं लाभं यदिह सकलं विश्वमवसि
प्रयासं लोकार्थेऽनवरतमनन्तञ्च वहसि।
ममाप्येतां शक्तिं वितर भगवन् नित्यमधुराम्
तवेदं वात्सल्यं यदि मयि ततो जन्म सफलम्।।१५।।

अन्वयः

भगवन्! लोभं लाभं विना इह यत् सकलं विश्वं अवसि, लोकार्थे अनवरतं अनन्तं प्रयासं च वहसि। यदि मयि तव इदं वात्सल्यं चेत् मम अपि एतां नित्यमधुरां शक्तिं वितर, ततः जन्म सफलम्।।१५।।

शब्दार्थः

भगवन्!= हे प्रभो!, **लोभम्**= लोभ के, **लाभम्**= लाभ के, **विना**= बगैर, **इह**= यहाँ, **यत्**= जो, **सकलम्**= समस्त, **विश्वम्**= संसार की, **अवसि**= रक्षा करते हो, **च**= और, **लोकार्थे**= लोककल्याण के निमित्त, **अनवरतम्**= निरन्तर, **अनन्तम्**= असीम, **प्रयासम्**= प्रयत्न, **वहसि**= स्वीकार करते हो, **मम**= मुझे, **अपि**= भी, **एताम्**= इस प्रकार की, **नित्यमधुराम्**= सर्वदा आकर्षक, **शक्तिम्**= सामर्थ्य को, **वितर**= प्रदान कीजिए, **यदि**= अगर, **मयि**= मुझ पर, **तव**= तुम्हारा, **इदम्**= यह, **वात्सल्यम्**= स्नेह हो जाये, **ततः**= तब तो, **जन्म**= यह मेरा जन्म, **सफलम्**= सफल हो जायेगा।।१५।।

भाषार्थः

हे प्रभो! बिना किसी लाभ-लोभ के तुम सारे संसार की रक्षा करते हो तथा लोकहित के लिये सर्वदा तत्पर रहते हो। मुझे भी ऐसा उत्तम सामर्थ्य प्रदान करो। इस तरह मुझ पर यदि तुम्हारा वात्सल्य हुआ तो मेरा जीवन सफल हो जायेगा।।१५।।

यदा दर्शं दर्शं निजमलिनकर्मावलिमहम्
घृणामात्मन्येव स्वयमिह दधे नैव करुणाम्।
न दत्तो निर्वासः कथमिह ममेत्यत्र फलितम्
स्वराज्यस्यान्तं त्वं यदिह विवशो नैव लभसे॥१६॥

अन्वयः

इह यदा निजमलिनकर्मावलिं दर्शं दर्शम् अहं स्वयम् एव आत्मनि घृणां दधे, करुणां न एव, कथं मम निर्वासः न दत्तः? यत् त्वं विवशः इह स्वराज्यस्य अन्तं न लभसे इति अत्र फलितम्।।१६।।

शब्दार्थः

यदा= जब, **निजमलिनकर्मावलिम्**= अपने मलिन कर्मों को, **दर्शं दर्शम्**= देख-देखकर, **अहम्**= मैं, **स्वयम्**= स्वयं, **एव**= ही, **आत्मनि**= अपने आप पर, **घृणाम्**= घृणा, **दधे**= करने लगता हूँ, **करुणाम्**= दया, **नैव**= नहीं करता, **कथम्**= कैसे, **मम**= मुझे, **इह**= इस संसार से, **निर्वासः**= निर्वासन का दण्ड, **न**= नहीं, **दत्तः**= दिया, **यत्**= जो, **त्वम्**= तुम, **विवशः**= विवश होकर, **इह**= इस संसार में, **स्वराज्यस्य**= अपने साम्राज्य का, **अन्तम्**= अन्त, **न**= नहीं, **एव**= ही, **लभसे**= पाते हो, **इति**= ऐसा, **अत्र**= यहाँ, **फलितम्**= प्रमाणित हुआ।।१६।।

भाषार्थः

प्रभो! जब मैं अपने दुष्कर्मों को देखता हूँ तो मुझे अपने आप पर घृणा होती है, दया नहीं आती। लेकिन तूने मुझे (अपने राज्य से) निर्वासित क्यों नहीं किया? इससे यह प्रमाणित हुआ कि तू विवश है, क्योंकि तू अपने राज्य की सीमा पाता ही नहीं।।१६।।

अहो! वृक्षस्याग्रे कुसुममतिरम्यं किमु भवान्
न मां दत्ते द्रष्टुं मुहुरिह शिरः सन्नमयति।
बहु क्रुद्धं बुद्धं नहि पुनरहो मूढमतिना
कथं पादस्यान्ते लुठति मम चिन्तामणिरयम्।।१७।।

अन्वयः

अहो! वृक्षस्य अग्रे अतिरम्यं कुसुमं भवान् मां द्रष्टुं न दत्ते। किमु इह शिरः मुहुः सन्नमयति? अहो! पुनः मूढमतिना (मया) बहु क्रुद्धं बुद्धं नहि। कथम् अयं चिन्तामणिः मम पादस्य अग्रे लुठति।।१७।।

शब्दार्थः

अहो= अरे, **वृक्षस्य**= वृक्ष के, **अग्रे**= शिखर पर, **अतिरम्यम्**= अत्यन्त रमणीय, **कुसुमम्**= फूल, **भवान्**= आप, **माम्**= मुझे, **न**= नहीं, **द्रष्टुम्**= देखने, **दत्ते**= देते हैं। **किमु**= क्यों, **इह**= यहाँ, **शिरः**= (मेरे) शिर को, **मुहुः**= बार-बार, **सन्नमयति**= झुका देते हैं, **पुनः**= फिर, **अहो!**= अरे!, **मूढमतिना**= मैं मूढबुद्धि, **बहु**= बहुत, **क्रुद्धम्**= क्रुद्ध हुआ, **बुद्धम्**= समझा, **न**= नहीं कि, **कथम्**= कैसे, **मम**= मेरे, **पादस्य**= पाँव के, **अन्ते**= निकट ही, **अयम्**= यह, **चिन्तामणिः**= कृपारूपी चिन्तामणि, **लुठति**= लुढक रही है।।१७।।

भाषार्थः

अहा! वृक्ष के शिखर पर क्या ही सुन्दर फूल खिला है। पर क्यों आप मुझे देखने नहीं देते हैं? बार-बार मेरे शिर को क्यों झुका देते हो? इससे मैं मूर्ख बहुत क्रुद्ध हो जाता हूँ और नहीं समझ पाता हूँ कि अरे! मेरे चरण के आगे यह कृपारूपी चिन्तामणि कैसे लुढक रही है?।।१७।।

मम श्रुत्वा काव्यं यदि मुदमुपेयुः सहृदयाः
कथं ब्रूयां न स्यान्मम सुखकरोऽयं व्यतिकरः।
इदं त्वन्यत् किञ्चिद्यदि नटति रोमावलिरियम्
यदास्मिन् व्यासङ्गे तव गुणकथा स्फूर्त्तिमयते॥१८॥

अन्वयः

यदि मम काव्यं श्रुत्वा सहृदयाः मुदम् उपेयुः (तर्हि) कथं न ब्रूयाम्, अयं व्यतिकरः मम सुखकरः स्यात् यदा अस्मिन् व्यासङ्गे यदि इयं रोमावलिः नटति, तव गुणकथा स्फूर्त्तिम् अयते, इति इदम् तु अन्यत् किञ्चित्॥१८॥

शब्दार्थः

यदि= अगर, **मम**= मेरे, **काव्यम्**= काव्य को, **श्रुत्वा**= सुनकर, **सहृदयाः**= सहृदय विद्वद्गण, **मुदम्**= प्रसन्नता को, **उपेयुः**= प्राप्त होते हों तो, **कथम्**= कैसे, **ब्रूयाम्**= कहूँ कि, **अयम्**= यह, **व्यतिकरः**= वृत्तान्त, **मम**= मेरे लिये, **सुखकरः**= आनन्ददायक, **न**= नहीं, **स्यात्**= होना चाहिए, **यदा**= जब, **अस्मिन्**= इस, **व्यासङ्गे**= भक्ति के प्रसङ्ग में, **यदि**= अगर, **इयम्**= यह, **रोमावलिः**= रोम-रोम, **नटति**= झूम उठता है, **तव**= तुम्हारा, **गुणकथा**= गुणकीर्त्तन, **स्फूर्त्तिम्**= संस्फुरण को, **अयते**= प्राप्त हो रहा हो, **तु**= तो, **इदम्**= यह, **अन्यत्**= और ही, **किञ्चित्**= कुछ बात है॥१८॥

भाषार्थः

हे प्रभो! यदि मेरे काव्य को सुनकर सहृदय प्रसन्न होते हों तो कैसे न कहूँ कि यह वृत्तान्त मेरे लिये सुखद हो। जब इस भक्ति के प्रसङ्ग में यह रोम-रोम झूमने लगे और तुम्हारा गुणकीर्त्तन संस्फुरित हो तो यह कुछ और ही बात है॥१८॥

जनाक्रन्दैः शून्ये क्वचिदपि गिरौ निर्झरतटे
यदिन्दोर्निष्यन्दे नयति सितिमानं त्रिभुवनम्।
विना हेतुं नेत्रे सततजलधारां प्रवहतः
स कोऽप्यानन्दोऽयं नहि तनुषु मानं व्रजति यः॥१९॥

अन्वयः

जनाक्रन्दैः शून्ये क्वचित् अपि गिरौ निर्झरतटे इन्दोः निष्यन्दे त्रिभुवनं सितिमानं नयति। यत् हेतुं विना नेत्रे सततजलधारां प्रवहतः, अयं सः कः अपि आनन्दः यः तनुषु मानं नहि व्रजति॥१९॥

शब्दार्थः

जनाक्रन्दैः= जन-कोलाहल से, **शून्ये**= रहित, **क्वचित्**= कहीं, **अपि**= भी, **गिरौ**= पर्वत पर, **निर्झरतटे**= जलप्रपात के किनारे, **इन्दोः**= चन्द्रमा की, **निष्यन्दे**= ज्योत्स्ना के प्रवाह द्वारा, **त्रिभुवनम्**= तीनों लोकों को, **सितिमानम्**= शुभ्रता से सम्पन्न, **नयति**= कर देने पर, **यत्**= जो, **हेतुम्**= कारण के, **विना**= बिना, **नेत्रे**= दोनों आँखें, **सततजलधाराम्**= निरन्तर आनन्दाश्रु की धारा, **प्रवहतः**= बहाती हैं, **अयम्**= यह, **सः**= वह, **कः अपि**= कोई, **आनन्दः**= आनन्द है, **यः**= जो, **तनुषु**= शरीर में, **मानम्**= समाया, **नहि**= नहीं, **व्रजति**= जाता॥१९॥

भाषार्थः

जन-कोलाहल से शून्य कहीं किसी पर्वत पर निर्झरिणी के किनारे चन्द्रमा की किरणों के प्रवाह द्वारा तीनों लोकों को शुभ्रता से सम्पन्न कर देने पर जो अकारण ही दोनों आँखें निरन्तर आनन्दाश्रु की धारा बहाती हैं, तब जो आनन्द होता है, वह शरीर में नहीं समाता॥१९॥

निशीथे विश्रब्धं शयनसुखमग्नेऽखिलजने
इमे केचिद् दुःखैः परवशजने वत्सलतया।
यदस्त्रान् मुञ्चन्ति प्रतिरजनि मुक्तैर्हिमकणैः
स्वयं कर्मण्यस्मिन् त्वमिह जननीमान् विनयसे॥२०॥

अन्वयः

इह निशीथे अखिलजने विश्रब्धं शयनसुखमग्ने इमे केचित् दुःखैः परवशजने वत्सलतया यत् अस्त्रान् मुञ्चन्ति। जननि! स्वयं त्वम् इमान् प्रतिरजनि मुक्तैः हिमकणैः इह अस्मिन् कर्मणि विनयसे॥२०॥

शब्दार्थः

इह= इस संसार में, **निशीथे**= अर्द्धरात्रि में, **अखिलजने**= समस्त लोगों के, **शयनसुखमग्ने**= निद्रासुख में मग्न होने पर, **इमे**= ये, **केचित्**= कई लोग, **दुःखैः**= दुःखों से, **परवशजने**= विवश लोगों पर, **वत्सलतया**= वात्सल्य के कारण, **यत्**= जो, **अस्त्रान्**= अश्रुओं को, **मुञ्चन्ति**= बहाते हैं, **जननि**= हे मातः, **इह**= संसार में, **प्रतिरजनि**= प्रत्येक रात, **मुक्तैः**= छोड़े हुए, **हिमकणैः**= ओसकणों के द्वारा, **त्वम्**= तुम, **स्वयम्**= आप ही, **इमान्**= इन लोगों को, **अस्मिन्**= इस, **कर्मणि**= कर्म में, **विनयसे**= प्रेरित करती हो॥२०॥

भाषार्थः

हे जननि! ये कुछ एक ऐसे दयालु जन हैं, जो अर्द्धरात्रि में, जब सब लोग निद्रासुख में मग्न रहते हैं, तब दुःख से पीड़ित लोगों पर वात्सल्य के कारण आँसू बहाते हैं। इन्हें हर रात ओस की बूँदों की वर्षा के बहाने तुम स्वयं ही तो इस काम में प्रेरित करती हो॥२०॥

निमग्ना स्वच्छन्दं भवति परमानन्दजलधौ
विहारायोन्मग्ना सदसि विदुषां लोभविवशा।
इमान् यानामुञ्चे निजरसनलग्नान् रसकणान्
इयं मुग्धा वाणी त इह खलु काव्येति भणिता॥२१॥

अन्वयः

इयं मुग्धा वाणी परमानन्दजलधौ स्वच्छन्दं निमग्ना भवति, लोभविवशा विदुषां सदसि विहाराय उन्मग्ना (भवति)। इमान् निजरसनलग्नान् यान् रसकणान् आमुञ्चे इह ते काव्या इति खलु भणिता॥२१॥

शब्दार्थः

इयम्= यह, **मुग्धा**= प्रसन्न और मधुर, **वाणी**= वाणी, **परमानन्दजलधौ**= परम आनन्दमय सागर में, **स्वच्छन्दम्**= स्वेच्छापूर्वक, **निमग्ना**= निमग्न, **भवति**= होती है, **लोभविवशा**= लोभ के वशीभूत होकर, **विदुषाम्**= विद्वज्जनों की, **सदसि**= संगोष्ठी में, **विहाराय**= विचरण करने के लिये, **उन्मग्ना**= उमंगों से भरी, **भवति**= होती है, **इमान्**= इन, **निजरसनलग्नान्**= अपनी रसना से सम्पृक्त, **यान्**= जिन, **रसकणान्**= भक्तिरस के कणों को, **आमुञ्चे**= अभिव्यक्त करता हूँ, (वही) **इह**= इस संसार में, **ते**= तुम्हारी, **काव्या**= प्रज्ञामयी संगिनी, **इति**= ऐसी, **खलु**= निश्चित रूप से, **भणिता**= कही जाती है॥२१॥

भाषार्थः

हे प्रभो! यह मेरी भोली मधुर वाणी परमानन्दमय सागर में स्वेच्छापूर्वक निमग्न होती है, तो कभी-कभी लोभ के वशीभूत होकर विद्वज्जनों की संगोष्ठी में विचरण करने के लिये उमंगों से भर जाती है। पुनरपि अपनी रसना से संपृक्त जिन भक्तिरस के कणों को मैं अभिव्यक्त करता हूँ, वही इस संसार में निश्चित रूप से तुम्हारी प्रज्ञामयी संगिनी (काव्या) कही जाती है॥२१॥

प्रतीपं कल्याणं तव शिशुरयं धारयति नः
परं प्रत्यक्षोऽयं विधिरपि न शक्योऽपलपितुम्।
न सन्देहः क्रीडारसमनुभवत्वेष सततम्
करैस्तप्तैः किन्तु प्रतिदिनमयं नः प्रदहति॥२२॥

अन्वयः

तव अयं शिशुः नः प्रतीपं कल्याणं धारयति, परम् अयं प्रत्यक्षः विधिः अपि अपलपितुं न शक्यः। एषः सततं क्रीडारसम् अनुभवतु इति न सन्देहः किन्तु अयं प्रतिदिनं तप्तैः करैः नः प्रदहति॥२२॥

शब्दार्थः

तव= तुम्हारा, **अयम्**= यह, **शिशुः**= सूर्यरूपी शिशु, **नः**= हमारे, **प्रतीपम्**= विपरीत, **कल्याणम्**= कल्याण को, **धारयति**= धारण करता है, **परम्**= किन्तु, **अयम्**= इस, **प्रत्यक्षः**= प्रत्यक्ष, **विधिः**= विधान (का), **अपि**= भी, **अपलपितुम्**= अपलाप करना, **शक्यः**= सम्भव, **न**= नहीं। **एषः**= यह, **सततम्**= निरन्तर, **क्रीडारसम्**= खेल का आनन्द, **अनुभवतु**= अनुभव करे, (इति= इसमें) **सन्देहः**= सन्देह, **न**= नहीं है, **किन्तु**= परन्तु, **अयम्**= यह, **प्रतिदिनम्**= प्रतिदिन, **तप्तैः**= प्रखर, **करैः**= किरणों से, **नः**= हमें, **प्रदहति**= दग्ध करता है॥२२॥

भाषार्थः

हे जननि! यह तुम्हारा सूर्यरूपी शिशु हमारा विपरीत कल्याण (अकल्याण) करता है। तुम्हारे इस सर्वजन प्रत्यक्ष विधान को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह (सूर्य) निरन्तर क्रीडारस में रमे। परन्तु यह हमें अपनी प्रखर किरणों से प्रतिदिन तपाता भी है॥२२॥

वयं धारापातैः शिशिरशिशिरैर्भूतलगृहे
सुशीतैरागारैर्व्यजनपवनैः कृत्रिमहिमैः।
स्वजीवं निर्वोढुं यदि कथमपि स्याम सफलाः
कथन्त्वेते कुर्य्युः खगमृगगणाः नान्यगतयः।।२३।।

अन्वयः

वयं शिशिरशिशिरैः धारापातैः सुशीतैः व्यजनपवनैः कृत्रिमहिमैः आगारैः यदि भूतलगृहे स्वजीवं निर्वोढुं कथम् अपि सफलाः स्याम, एते तु नान्यगतयः खगमृगगणाः कथं कुर्य्युः।।२३।।

शब्दार्थः

वयम्= हम मानव, **शिशिरशिशिरैः**= ठण्डे-ठण्डे, **धारापातैः**= जलधारा की बौछारों से, **सुशीतैः**= सुशीतल, **व्यजनपवनैः**= पंखों की हवा से, **कृत्रिमहिमैः**= कृत्रिम रूप से ठण्डे किये गये, **आगारैः**= घरों के सहारे, **यदि**= यदि, **भूतलगृहे**= भूमितल पर बने घरों में, **कथमपि**= किसी प्रकार, **स्वजीवम्**= अपने जीवन का, **निर्वोढुम्**= निर्वाह करने में, **सफलाः**= सफल, **स्याम**= हो जायें, **तु**= किन्तु, **एते**= ये, **नान्यगतयः**= अनन्य शरण, **खगमृगगणाः**= पक्षी और मृगादि पशु, **कथम्**= कैसे, **कुर्य्युः**= (अपने जीवन का निर्वाह) करें।।२३।।

भाषार्थः

हे जननि! हम मानव ठण्डे-ठण्डे जल की बौछारों से, सुशीतल पंखों की हवाओं से और वातानुकूलित शीतल घरों में अपना जीवन निर्वाह करने में किसी प्रकार भले ही सफल हो जायें; परन्तु ये अनन्यगति वाले पशु-पक्षी क्या करें, कैसे जीवित रहें?।।२३।।

हृते छत्रे पत्रैर्विरहिततनौ पादपगणे
वदन्तः स्वं भावं हृदयगतमार्त्तैः स्वनयनैः।
नदीतीरे दूरे कथमपि हृताः गोपशिशुभिः
भजन्ते रोमन्थं प्रविरलजले ग्राम्यपशवः॥२४॥

अन्वयः

पादपगणे पत्रैः विरहिततनौ छत्रे हृते प्रविरलजले दूरे नदीतीरे गोपशिशुभिः हृताः ग्राम्यपशवः आर्त्तैः स्वनयनैः हृदयगतं स्वं भावं वदन्तः कथमपि रोमन्थं भजन्ते॥२४॥

शब्दार्थः

पादपगणे= वृक्षों के, **पत्रैः**= पत्रों से, **विरहिततनौ**= रहित शरीर हो जाने पर, **छत्रे**= प्राकृतिक छत्र के, **हृते**= नष्ट होने पर, **प्रविरलजले**= स्वल्प जल वाले, **दूरे**= दूर, **नदीतीरे**= नदी के किनारे, **गोपशिशुभिः**= ग्वालवालों के द्वारा, **हृताः**= हाँक कर लिये हुए, **ग्राम्यपशवः**= गोमहिषादि पालतू पशु, **आर्त्तैः**= दीनतापूर्ण, **स्वनयनैः**= अपने नेत्रों से, **स्वम्**= अपने, **हृदयगतम्**= हृदयस्थ, **भावम्**= भाव को, **वदन्तः**= प्रकट करते हुए, **कथमपि**= किसी तरह, **रोमन्थम्**= जुगाली, **भजन्ते**= करते हैं॥२४॥

भाषार्थः

वृक्षों के पत्रों से विहीन हो जाने से प्राकृतिक छत्र के नष्ट हो जाने पर स्वल्प जलवाले दूर नदी के किनारे ग्वालवालों के द्वारा हाँककर ले जाये गये गोमहिषादि पालतू पशु दीनतापूर्ण अपने नेत्रों से स्व-हृदयस्थ भावों को प्रकट करते हुए किसी तरह जुगाली करते हैं॥२४॥

य एते दातारो यवयवसगोधूमपयसाम्
सुषिक्ताः प्रस्वेदैर्विरलवसनाश्छत्रविमुखाः।
सुतप्तायां भूमौ क्वचिदपि पदत्राणरहिताः
किमेषान्तप्तानां सततपरितापः श्रमफलम्।।२५।।

अन्वयः

एते ये यवयवसगोधूमपयसां दातारः छत्रविमुखाः विरलवसनाः प्रस्वेदैः सुषिक्ताः क्वचित् अपि सुतप्तायां भूमौ पदत्राणरहिताः, एषां तप्तानां श्रमफलं किं सततपरितापः एव।।२५।।

शब्दार्थः

एते= ये, **ये**= जो, **यवयवसगोधूमपयसाम्**= जौ-चारे-गेहूँ-दूध के, **दातारः**= देने वाले, **छत्रविमुखाः**= छत्ररहित, **विरलवसनाः**= स्वल्पवस्त्रधारी, **प्रस्वेदैः**= पसीने से, **सुषिक्ताः**= लथपथ, **क्वचित्**= कहीं, **अपि**= भी, **सुतप्तायाम्**= बहुत तपती हुई, **भूमौ**= धरती पर, **पदत्राणरहिताः**= जूते-चप्पल बिना होते हैं, **किम्**= क्या, **एषाम्**= इन, **तप्तानाम्**= तप्त कृषक जनों के, **श्रमफलम्**= परिश्रम का फल, **सततपरितापः**= निरन्तर कष्ट सहना, **एव**= ही है।।२५।।

भाषार्थः

हे जननि! सारी दुनिया को जौ, चारा, गेहूँ और दूध आदि देनेवाले, छत्ररहित, स्वल्प वस्त्रधारी, पसीने से लथपथ जहाँ कहीं भी भीषण तपती हुई धरती पर जूते-चप्पल बिना नंगे पाँव वाले कृषक हैं, क्या इन बेचारे तप्त जनों के परिश्रम का फल निरन्तर कष्ट सहना ही है?।।२५।।

सरः शोषं नीतं लुठति शफरी तोयविरहे
प्रयाता पिङ्गत्वं हरितवसनाशाद्वलमही।
नभो भूमिप्रायं कृतमविरलैर्घोरपवनै-
रियं चेत् क्रीडा ते कथय ननु रोषः किमु भवेत्॥२६॥

अन्वयः

सरः शोषं नीतं, तोयविरहे शफरी लुठति, हरितवसना शाद्वलमही पिङ्गत्वं प्रयाता। अविरलैः घोरपवनैः नभः भूमिप्रायं कृतम्, इयं चेत् ते क्रीडा कथय ननु रोषः किमु भवेत्॥२६॥

शब्दार्थः

सरः= तालाब, **शोषम्**= शुष्कता को, **नीतम्**= प्राप्त हो गया, **तोयविरहे**= जल के अभाव में, **शफरी**= मछली, **लुठति**= छटपटा रही है, **हरितवसना**= हरे वस्त्रों वाली, **शाद्वलमही**= तृणाच्छन्न भूमि, **पिङ्गत्वम्**= भूरेपन को, **प्रयाता**= प्राप्त कर चुकी है, **अविरलैः**= निरन्तर बहते हुए, **घोरपवनैः**= प्रबल पवन ने, **नभः**= आकाश को, **भूमिप्रायम्**= अतिशय धूलिधूसरित, **कृतम्**= बना दिया है, **इयम्**= यह, **चेत्**= यदि, **ते**= तुम्हारा, **क्रीडा**= खेल है तो, **कथय**= कहो, **ननु**= निश्चय ही, **रोषः**= कोप, **किमु**= कैसा, **भवेत्**= होगा॥२६॥

भाषार्थः

तालाब सूख चुके हैं। उनमें जल के अभाव में मछलियाँ छटपटा रही हैं। पहले हरी साड़ी पहनी तृणाच्छन्न भूमि अब भूरी हो गयी है। निरन्तर बहती तेज हवा ने आकाश को धूल से पाट कर भूमि-सा बना डाला है। हे जननि! यदि यह तुम्हारा क्रीडा-कौतुक है, तो बताओ तुम्हारा क्रोध कैसा होगा?॥२६॥

प्रजानामाक्रोशं करुणमिह मन्ये श्रुतवती
त्वमास्ये तस्याधाः प्रचलकुशिशोर्मेचकमसिम्।
स एवायं मेघो घनतिमिरलेपाकृतिधरः
रवेरश्रून्मिश्रः स्रवति नु सहस्राणि सरिताम्।।२७।।

अन्वयः

मन्ये त्वम् इह प्रजानां करुणम् आक्रोशं श्रुतवती, तत् तस्य प्रचलकुशिशोः आस्ये मेचकमसिम् अधाः। सः एव घनतिमिरलेपाकृतिधरः अयं मेघः नु रवेः अश्रून्मिश्रः सरितां सहस्राणि स्रवति।।२७।।

शब्दार्थः

मन्ये= समझता हूँ कि, **त्वम्**= तुमने, **इह**= यहाँ संसार में, **प्रजानाम्**= प्रजाओं के, **करुणम्**= दीनतापूर्ण, **आक्रोशम्**= चीत्कार को, **श्रुतवती**= सुन लिया है, **तत्**= इसलिये, **तस्य**= उस, **प्रचलकुशिशोः**= चञ्चल व दुष्ट अपने शिशु (सूर्य) के, **आस्ये**= मुखपर, **मेचकमसिम्**= काला काजल, **अधाः**= पोत दिया, **सः**= वह, **एव**= ही, **घनतिमिरलेपाकृतिधरः**= घने अन्धकार के लेप के आकार को धारण किया हुआ, **अयम्**= यह, **मेघः**= बादल, **नु**= मानो (निश्चय ही), **रवेः**= सूर्य के, **अश्रून्मिश्रः**= आँसुओं से मिश्रित होकर, **सरिताम्**= नदियों को, **सहस्राणि**= हजारों की संख्या में, **स्रवति**= प्रवाहित करता है।।२७।।

भाषार्थः

हे परमकरुणामयि मातः! मैं समझता हूँ कि इस संसार में आपने प्रजाओं की करुण पुकार अवश्य सुन ली है, तभी तो चञ्चल व दुष्ट अपने शिशु (सूर्य) के मुख पर काले काजल का लेपन कर दिया। वही घने अन्धकार के लेप के आकार को धारण किया हुआ यह बादल मानो सूर्य के आंसुओं में मिलकर हजारों नदियों को प्रवाहित करने लगा है।।२७।।

त्वमेवाक्रन्दानां ध्वनिमसहमाना तनुभृताम्
पयोदव्याजेन स्वमुखमथवावृत्य सविता।
तदेतन्निष्ठ्यूतं बहुजलभरैः नीरदपटैः
क्रमात्ते कारुण्यं लवणयुतवारां निधिरभूत्॥२८॥

अन्वयः

त्वम् एव तनुभृताम् आक्रन्दानां ध्वनिम् असहमाना अथवा सविता पयोदव्याजेन स्वमुखम् आवृत्य बहुजलभरैः नीरदपटैः निष्ठ्यूतं तत् एतत् ते कारुण्यं क्रमात् लवणयुतवारां निधिः अभूत्॥२८॥

शब्दार्थः

त्वम्= तुम, **एव**= ही, **तनुभृताम्**= प्राणियों के, **आक्रन्दानाम्**= करुणक्रन्दन के, **ध्वनिम्**= पुकार को, **असहमाना**= सहन न करते हुए, **अथवा**= वा, **सविता**= सूर्य, **पयोदव्याजेन**= बादल के बहाने, **स्वमुखम्**= अपने मुख को, **आवृत्य**= आच्छादित करके, **बहुजलभरैः**= प्रचुर जल से भारयुक्त, **नीरदपटैः**= मेघसमूह द्वारा, **निष्ठ्यूतम्**= विमुक्त, **तत्**= वही, **एतत्**= यह, **ते**= तुम्हारा, **कारुण्यम्**= करुणाश्रुधारा, **क्रमात्**= क्रमशः, **लवणयुतवाराम्**= खारे जल का, **निधिः**= भण्डार (सागर), **अभूत्**= बन गया॥२८॥

भाषार्थः

हे मातः! तू ग्रीष्म सन्तप्त प्राणियों की करुण पुकार को सहन न करती हुई अथवा बादल के बहाने से सूर्य ही अपना मुख छिपाकर आंसुओं को मेघरूपी वस्त्र से पोंछकर निचोड़ता है, इसी कारण आंसुओं के खारी होने से समुद्र का पानी भी खारा हो गया है॥२८॥

प्रवाहे शालीनामसितघनमालाञ्चिततनौ
बकालीव्यालीना विमलसितमुक्तावलिरुचिः।
क्वचित् कान्तिं चामीकरजयनशीलां धृतवती
करैर्मिश्रा भानोर्गमयति मनः कामपि दशाम्।।२९।।

अन्वयः

असितघनमालाञ्चितततनौ शालीनां प्रवाहे बकालीव्यालीना विमलसितमुक्ता- वलिरुचिः। क्वचिद् भानोः करैः मिश्रा चामीकरजयनशीलां कान्तिं धृतवती मनः काम् अपि दशां गमयति।।२९।।

शब्दार्थः

असितघनमालाञ्चिततनौ= काले मेघों से प्रतिबिम्बयुक्त, **शालीनाम्**= धान्यक्षेत्रों के, **प्रवाहे**= लहरों में, **बकालीव्यालीना**= बगुलों में व्याप्त, **विमलसितमुक्तावलिरुचिः**= निर्मल शुभ्र मोतियों की कान्ति, **क्वचित्**= कभी-कभी, **भानोः**= सूर्य के, **करैः**= किरणों से, **मिश्रा**= सम्पृक्त होकर, **चामीकरजयनशीलाम्**= स्वर्ण के कान्ति को भी मात कर देने वाली, **कान्तिम्**= शोभा को, **धृतवती**= वहन करती हुई, **मनः**= मानस को, **कामपि**= कोई एक अनिर्वचनीय, **दशाम्**= दशा को, **गमयति**= पहुँचा देती है।।२९।।

भाषार्थः

श्यामल मेघमालाओं से सुशोभित धान्यक्षेत्र की लहरों में बगुलों की पङ्क्तियों की स्वच्छ और शुभ्र मुक्तावली की-सी द्युति छाई हुई है। कहीं-कहीं पर सोने की कान्ति को भी मात करनेवाली कान्ति को धारण की हुई वह मुक्तावली जैसी द्युति सूर्य की किरणों के सम्पर्क से मन में कोई अनिर्वचनीय अवस्था को उत्पन्न कर रही है।।२९।।

यदा ते वात्सल्यं बहुजलदधारापरिणतम्
सहस्रैर्बिन्दूनां जगदिदमशेषं स्नपयति।
तदा ते भक्तानां जननि! मधुरा जन्म लभते
तवाङ्के सुप्तानां परिणतिरहो कापि मनसः॥३०॥

अन्वयः

जननि! यदा ते वात्सल्यं बहुजलदधारापरिणतं बिन्दूनां सहस्रैः इदम् अशेषं जगत् स्नपयति, तदा तव अङ्के सुप्तानां ते भक्तानां मनसः अहो कापि मधुरा परिणतिः जन्म लभते॥३०॥

शब्दार्थः

जननि!= हे मातः!, **यदा**= जब, **ते**= तुम्हारा, **वात्सल्यम्**= वात्सल्यस्नेह, **बहुजलदधारापरिणतम्**= प्रचुर मेघ की धारा के रूप में परिणत होकर, **बिन्दूनां सहस्रैः**= असंख्य बिन्दुओं से, **इदम्**= इस, **अशेषम्**= समस्त, **संसारम्**= संसार को, **स्नपयति**= स्नान कराता है, **तदा**= तब, **तव**= तुम्हारी, **अङ्के**= गोद में, **सुप्तानाम्**= सोये हुए, **ते**= तुम्हारे, **भक्तानाम्**= भक्तों के, **मनसः**= मन की, **अहो**= अहो!, **कापि**= क्या ही, **मधुरा**= मधुर, **परिणतिः**= अवस्था, **जन्म**= उत्पन्न, **लभते**= होती है॥३०॥

भाषार्थः

हे जननि! जब तुम्हारा वात्सल्यस्नेह असंख्य मेघों की बौछार (धारा) के रूप में बदल जाता है और सम्पूर्ण संसार को असंख्य जलराशि से नहला देता है, उस समय तेरी आह्लादमयी गोदी में सोये हुए भक्तों के मन में अहह! क्या ही अवर्णनीय मधुर अवस्था जन्म लेने लगती है॥३०॥

न यामेषा वाणी कथयितुमलं किन्तु सकलम्
जगद् व्याप्तौ यस्याः प्रयतजलधारैरभिनवैः।
नदीपूरं याति प्रणमति तरुर्नृत्यति शिखी
क्षिपन्नूर्ध्वं बाहू नटति करतालैः शिशुजनः॥३१॥

अन्वयः

याम् एषा वाणी कथयितुम् अलं न; किन्तु यस्याः व्याप्तौ सकलं जगत् अभिनवैः प्रयतजलधारैः नदीपूरं याति तरुः प्रणमति शिखी नृत्यति शिशुजनः बाहू ऊर्ध्वं क्षिपन् करतालैः नटति॥३१॥

शब्दार्थः

याम्= जिसे, **एषा**= यह, **वाणी**= भाषा, **कथयितुम्**= वर्णन करने के लिये, **अलम्**= समर्थ, **न**= नहीं, **किन्तु**= परन्तु, **यस्याः**= जिस आनन्दमय अवस्था के, **व्याप्तौ**= व्याप्त होने पर, **सकलम्**= सारा, **जगत्**= संसार (व्यक्त करने में समर्थ होता है), **अभिनवैः**= नये-नये, **प्रयतजलधारैः**= प्रचुर-प्रखर जलधारा के साथ, **नदीपूरम्**= नदी का प्रवाह, **याति**= बहने लगता है, **तरुः**= वृक्ष, **प्रणमति**= झुक जाता है, **शिखी**= मोर, **नृत्यति**= नाचने लगता है, **शिशुजनः**= बच्चे, **बाहू**= दोनों भुजाओं को, **ऊर्ध्वम्**= ऊपर, **क्षिपन्**= उठाये हुए, **करतालैः**= तालियाँ बजाते हुए, **नटति**= नाचने लगते हैं॥३१॥

भाषार्थः

हे मातः! जिसे यह मेरी वाणी वर्णन करने में असमर्थ है; किन्तु उस आनन्दमय अवस्था के व्याप्त होने पर सारा संसार (व्यक्त करने में समर्थ होता है) अभिनव प्रखर जलधारा के साथ नदी का प्रवाह बहने लगता है, वृक्ष झुक जाते हैं, मोर नाचने लगते हैं, बच्चे भुजाओं को ऊपर उठाये तालियाँ बजाते हुए नाचने लगते हैं॥३१॥

पुरा यः सन्तापं सकलभुवनानामजनयत्
चतुर्मासस्यान्ते बहुविधजलैः क्षालितमुखः।
शिशुः सोऽयं मातः तव विनयशिक्षामुपगतः
विहायोग्रं रूपं स्मितमधुरकान्तिं वितनुते॥३२॥

अन्वयः

मातः! पुरा यः सकलभुवनानां सन्तापम् अजनयत्। चतुर्मासस्य अन्ते बहुविधजलैः क्षालितमुखः सः तव अयं शिशुः विनयशिक्षाम् उपगतः उग्रं रूपं विहाय स्मितमधुरकान्तिं वितनुते॥३२॥

शब्दार्थः

मातः= हे जननि!, **पुरा**= पहले, **यः**= जो, **सकलभुवनानाम्**= सारे संसार के, **सन्तापम्**= सन्ताप को, **अजनयत्**= उत्पन्न करता था, **चतुर्मासस्य**= वर्षाऋतु के, **अन्ते**= बाद, **बहुविधजलैः**= विभिन्न जल से, **क्षालितमुखः**= धोये हुए मुँह वाला, **सः**= वही, **तव**= तुम्हारा, **अयम्**= यह, **शिशुः**= सूर्यरूप शिशु, **विनयशिक्षाम्**= विनम्रता की शिक्षा को, **उपगतः**= प्राप्तकर, **उग्रम्**= प्रचण्ड, **रूपम्**= स्वरूप को, **विहाय**= त्यागकर, **स्मितमधुरकान्तिम्**= सहास मधुरतापूर्ण शोभा को, **वितनुते**= फैला रहा है॥३२॥

भाषार्थः

हे मातः! पहले जो सारी दुनिया को सन्ताप दे रहा था, वही तेरा शिशु (सूर्य) चातुर्मास्य के बाद अनेक प्रकार के जलों से मुख प्रक्षालन किया हुआ और विनम्रता की शिक्षा को प्राप्त करता हुआ अपने प्रचण्ड स्वरूप को त्यागकर मधुर मुस्कान के द्वारा कान्ति फैला रहा है॥३२॥

जडोऽहं काष्ठत्वं मयि भवतु कारुण्यजलधे!
चमत्कारस्तेऽयं यदिह लघुता गौरवमभूत्।
अतो ह्यानन्दाद्रेरधिशिखरमेषा प्रवहति
प्रसह्याधीनं मां गिरिसमशिखा भक्तिलहरी॥३३॥

अन्वयः

कारुण्यजलधे! अहं जडः मयि काष्ठत्वं भवतु अयं ते चमत्कारः यत् इह लघुता गौरवम् अभूत्। अतो हि एषा गिरिसमशिखा भक्तिलहरी माम् अधीनं प्रसह्य आनन्दाद्रेः अधिशिखरं प्रवहति॥३३॥

शब्दार्थः

कारुण्यजलधे!= हे करुणासागर!, **अहम्**= मैं, **जडः**= जड़ हूँ, (चाहे) **मयि**= मुझमें, **काष्ठत्वम्**= काठ के जैसी जड़ता, **भवतु**= हो (तो), **अयम्**= यह, **ते**= तुम्हारा, **चमत्कारः**= चमत्कार ही है, **यत्**= कि, **इह**= यहाँ (यह), **लघुता**= क्षुद्रता, **गौरवम्**= श्रेष्ठता, **अभूत्**= बन गयी है, **अतो हि**= इसीलिये तो, **एषा**= यह, **गिरिसमशिखा**= पर्वतों जैसी ऊँची तरङ्गों वाली, **भक्तिलहरी**= भक्ति की लहरी, **माम्**= मुझको, **अधीनम्**= विवश (कर), **प्रसह्य**= बलपूर्वक, **आनन्दाद्रेः**= आनन्दमय पर्वत के, **अधिशिखरम्**= शिखर पर, **प्रवहति**= पहुँचा देती है॥३३॥

भाषार्थः

हे करुणासागर! मैं जड़ हूँ। चाहे मुझमें काष्ठ के जैसी जड़ता हो। यह तुम्हारा चमत्कार ही है कि यह मेरी क्षुद्रता गौरव बन गयी है। इसीलिए तो यह पर्वतों जैसी ऊँची तरङ्गों वाली भक्ति की लहरी मुझको विवश कर बलपूर्वक आनन्दमय पर्वत के शिखर पर उछाल कर पहुँचा देती है॥३३॥

अरित्रे नौदण्डस्तरणिरखिलं दारुविकृतम्
तरेदेतत्सर्वं सहजलघुभावस्य वशजम्।
सतीर्थ्ये मीनानां मयि न भयमेतन्नु विषमम्
कमालम्बं यायात् तरणिविकलो यात्रिकजनः।।३४।।

अन्वयः

अरित्रे नौदण्डः तरणिः अखिलं दारुविकृतं सहजलघुभावस्य वशजम् एतत् सर्वं तरेत्। मयि मीनानां सतीर्थ्ये भयं न, तरणिविकलः यात्रिकः जनः तु कम् आलम्बं यायात् एतत् विषमम्।।३४।।

शब्दार्थः

अरित्रे= दोनों पतवार, **नौदण्डः**= डांड, **तरणिः**= नाव, **अखिलम्**= सब, **दारुविकृतम्**= काष्ठ का विकार है, **सहजलघुभावस्य**= स्वाभाविक लघुता के, **वशजम्**= अधीन, **एतत्**= यह, **सर्वम्**= सब, **तरेत्**= तैर सकता है, **मयि**= मेरे, **मीनानाम्**= मत्स्यों के, **सतीर्थ्ये**= सहचारी (समानगति) होने से, **भयम्**= भय, **न**= नहीं है, **तु**= किन्तु, **तरणिविकलः**= नौका के बिना त्रस्त, **यात्रिकजनः**= यात्री लोग, **कम्**= किस, **आलम्बम्**= आश्रय का, **यायात्**= सहारा लें, **एतत्**= यह, **विषमम्**= बड़ी चिन्ता की बात है।।३४।।

भाषार्थः

दोनों पतवार, नाव के डण्डे, नौका यह सब कुछ लकड़ी का विकार है। इसलिए यह सब स्वभावतः हल्के होने के कारण किसी ना किसी तरह किनारे लग जाएंगे। मुझे भी मछलियों के साहचर्य में तैर सकने के कारण भय नहीं है। किन्तु यह बड़ी चिन्ता की बात है कि ये जो दूसरे यात्री लोग हैं, वे किसका सहारा लें? किस तरह पार हो सकें?।।३४।।

भुजालम्बं केचिद्ददति जलमग्नाय जनुषे
नयन्त्यन्ये शिल्पैस्तरणिमिह भग्नां सुनवताम्।
यदेतान् कल्लोलान् गिरिसमशिखान्नौकयसि नः
चमत्कारः सोऽयं तव निपुणवाचो न विषयः।।३५।।

अन्वयः

इह केचित् जलमग्नाय जनुषे भुजालम्बं ददति, अन्ये शिल्पैः भग्नां तरणिं सुनवतां नयन्ति। यत् एतान् गिरिसमशिखान् कल्लोलान् नः नौकयसि, तव सः अयं चमत्कारः निपुणवाचः विषयः न।।३५।।

शब्दार्थः

इह= यहाँ, **केचित्**= कई लोग, **जलमग्नाय**= जल में डूबते हुए, **जनुषे**= प्राणियों को, **भुजालम्बम्**= हाथ का सहारा, **ददति**= देते हैं, **अन्ये**= और कुछ लोग, **शिल्पैः**= कारीगरी से, **भग्नाम्**= टूटी हुई, **तरणिम्**= नाव को, **सुनवताम्**= अच्छी तरह से नयी, **नयन्ति**= बना लेते हैं। **यत्**= जो, **एतान्**= इन, **गिरिसमशिखान्**= पर्वत तुल्य उच्च शिखाओं वाली, **कल्लोलान्**= महातरंगो को, **नः**= हमारे लिये, **नौकयसि**= नौका बना देते हो, **सः**= वह, **अयम्**= यह, **तव**= तुम्हारा, **चमत्कारः**= चमत्कार, **निपुणवाचः**= वाणी के धनी के द्वारा भी, **विषयः**= वर्णन किये जाने के योग्य, **न**= नहीं है।।३५।।

भाषार्थः

इस विषम परिस्थिति में पानी में डूबने वालों को कुछ लोग हाथ का सहारा दे रहे हैं। अन्य कुछ लोग अच्छे शिल्प से टूटी हुई नौका को ठीक कर रहे हैं; किन्तु हे परमदयालु-प्रभो! आप तो पर्वत सदृश इन ऊँची लहरों को ही हमारे लिये नौका बना देते हैं। यह तो आप का चमत्कार ही है। वाणी के धनी भी इसका वर्णन नहीं कर सकते।।३५।।

नभस्तेजो लब्ध्वा जयमिदमनीकञ्च मरुताम्
मुदालिङ्गद् भूमेः कुसुमसुभगं मण्डलमिदम्।
मनोऽस्माकं ब्रह्मँस्त्वयि निहितभारं पुलकितम्
वसन्ते सम्प्राप्ते नटतु सकला क्लीबपरिषत्॥३६॥

अन्वयः

नभः तेजः इदं मरुताम् अनीकं जयं च लब्ध्वा मुदा भूमेः कुसुमसुभगं मण्डलम् आलिङ्गत्। ब्रह्मन्! अस्माकं मनः त्वयि निहितभारं पुलकितं, वसन्ते सम्प्राप्ते सकला क्लीबपरिषत् नटतु॥३६॥

शब्दार्थः

नभः= आकाश, **तेजः**= तेज को, **लब्ध्वा**= पाकर, **च**= और, **इदम्**= यह, **मरुताम्**= हवाओं का, **अनीकम्**= समूह, **जयम्**= विजय-लाभ कर, **मुदा**= आनन्द से, **भूमेः**= धरती के, **कुसुमसुभगम्**= विभिन्न फूलों से सुशोभित, **मण्डलम्**= मण्डल का, **आलिङ्गत्**= आलिङ्गन करने लगा है। **ब्रह्मन्**= हे परब्रह्म!, **अस्माकम्**= हमारा, **मनः**= मन, **त्वयि**= तुम पर, **निहितभारम्**= समस्त भार अर्पण कर, **पुलकितम्**= पुलकित हो रहा है, **वसन्ते**= वसन्त के, **सम्प्राप्ते**= आ जाने से, **सकला**= सारी, **क्लीबपरिषत्**= जड़-प्रकृति, **नटतु**= नाचने लगे॥३६॥

भाषार्थः

अब तो आकाश निर्मल तेज से विभासित हो रहा है और मरुत् (पवनदेव) की सेनाएँ समस्त भुवनों को विजित करके कुसुमों से सुशोभित भूमण्डल को आनन्द से आलिङ्गन कर रही हैं। इस मधुमय मुहूर्त्त में हे ब्रह्मन्! हमारा मन आपके चरणो में ध्यानमग्न होने से परमानन्द से पुलकित हो रहा है। वसन्त के आगमन से हे प्रभो! न केवल चेतन, अपितु सारी की सारी जड़ प्रकृति आनन्द से झूम उठती है॥३६॥

❁ इति स्वामिसमर्पणानन्दविरचिता 'भक्तिलहरी' समाप्ता ❁

दुर्गाहं श्रौतसिन्धुं विदधतमुदरे रत्नमालामलभ्याम्
गम्भीरे क्वापि कोणे जनितबहुभयं शैलतुल्यैस्तरङ्गैः।
लब्ध्वा यद् बिन्दुमात्रं मतिरपि शिशुकस्येहते गाहितुं मे
सा मामङ्के लुठन्तं स्नपयतु सततं स्तन्यधारा जनन्याः॥

अन्वयः

यत् बिन्दुमात्रं लब्ध्वा मे शिशुकस्य मतिः अलभ्यां रत्नमालां क्व अपि गम्भीरे कोणे उदरे विदधतं शैलतुल्यैः तरङ्गैः जनितबहुभयं दुर्गाहं श्रौतसिन्धुम् अपि गाहितुम् ईहते, जनन्याः सा स्तन्यधारा अङ्के लुठन्तं मां सततं स्नपयतु॥

शब्दार्थः

यत्= जिनकी, **बिन्दुमात्रम्**= स्वल्पमात्र कृपा, **लब्ध्वा**= पाकर, **मे**= मुझ, **शिशुकस्य**= अबोध शिशु की, **मतिः**= बुद्धि, **अलभ्याम्**= दुर्लभ, **रत्नमालाम्**= रत्नमाला (ज्ञान-विज्ञान के भण्डार) को, **क्वापि**= किसी, **गम्भीरे**= निभृत, **कोणे**= कोने, **उदरे**= अपने अन्दर, **विदधतम्**= धारण किये हुए, **शैलतुल्यैः**= पर्वत जैसे, **तरङ्गैः**= तरङ्गों से, **जनितबहुभयम्**= मन में भयसञ्चार करते हुए, **दुर्गाहम्**= अगाध (दुस्तर), **श्रौतसिन्धुम्**= श्रुति-समुद्र में, **अपि**= भी, **गाहितुम्**= अवगाहन करने के लिए, **ईहते**= लालायित हो रही है, **जनन्याः**= परमकरुणामयी जगज्जननी की, **सा**= वही (सुधामयी), **स्तन्यधारा**= स्तन्यधारा, **अङ्के**= गोद में, **लुठन्तम्**= लोटने वाले, **माम्**= मुझ शिशु को, **सततम्**= अनवरत, **स्नपयतु**= स्नान कराये॥

भाषार्थः

जिनकी बिन्दु-मात्र कृपा पाकर मुझ अबोध शिशु की मति दुर्लभ रत्नमाला (ज्ञान-विज्ञान के भण्डार) को किसी निभृत कोने में धारण करके रखने वाले, पर्वत जैसी तरङ्गों से मन में भयसञ्चार करने वाले अर्थात् मतवादों के कारण क्लिष्ट तथा दुर्बोध अगाध दुस्तर श्रुति-समुद्र में अवगाहन करने के लिये लालायित हो रही है। ऐसी परिस्थिति में परमकरुणामयी जगज्जननी की सुधामयी स्तन्यधारा गोद में लोटने वाले मुझ शिशु को अनवरत स्नान कराये। वात्सल्यमयी जननी की कृपावारि मुझ शिशु के ऊपर सदा बरसती रहे॥

अहो धन्या भूमिः स्पृशति चरणं यस्य विदुषः
कृतार्थोऽयं लोकः प्रभुभजनमाहात्म्यमतुलम्।
मुदा श्रावं वाचः पुलकिततनुर्नावगतवान्
मयेदं स्वश्लाघाश्रवणरसिकानान्तु विवृतम्।।

अन्वयः

अहो! धन्या भूमिः यस्य विदुषः चरणं स्पृशति, वाचः मुदा श्रावं अयं लोकः कृतार्थः, पुलकिततनुः (सः) अतुलं प्रभुभजनमाहात्म्यं न अवगतवान्। मया तु स्वश्लाघाश्रवणरसिकानाम् इदं विवृतम्।।

शब्दार्थः -

अहो!= अरे!, **धन्या**= धन्य हुई, **भूमिः**= यह धरती, **यस्य**= जिस, **विदुषः**= विद्वज्जन के, **चरणम्**= चरण, **स्पृशति**= स्पर्श करती है, **(यस्य च**= और जिसकी **) वाचः**= वाणी को, **मुदा**= प्रसन्नता से, **श्रावम्**= सुनकर, **अयम्**= यह, **लोकः**= संसार, **कृतार्थः**= कृतकृत्य (हो गया है), **पुलकिततनुः**= रोमाञ्चित प्रफुल्लचित्त वाला, **(सः**= वही **) अतुलम्**= अनुपम, **प्रभुभजनमाहात्म्यम्**= परमात्मभक्ति की महिमा को, **न**= नहीं, **अवगतवान्**= जान पाया। **मया**= मैंने, **तु**= तो, **स्वश्लाघाश्रवणरसिकानाम्**= अपनी ही प्रशंसा के श्रवणरस का आस्वादन करने वालों की, **इदम्**= यह बात, **विवृतम्**= अभिव्यक्त की है।।

भाषार्थः

अहो! जिन विद्वानों के चरणरज का संस्पर्श पाकर यह धरा धन्य हो गई है तथा जिनकी वैदुष्यपूर्ण वाणी को प्रसन्नतापूर्वक सुनकर यह संसार भी कृतकृत्य हो गया है, ऐसी स्थिति में ही केवल हर्षोत्फुल्ल एवं रोमाञ्चित होने वाले वे जन उस अनुपम एवं अतुलनीय प्रभुभक्ति के माहात्म्य को नहीं जान पाये हैं। अत एव मैंने तो आत्मप्रशंसा के श्रवण में ही सदा आनन्दमग्न रहने वालों के लिए यह बात स्पष्टतः अभिव्यक्त की है।।

परिश्रान्तौ बाहू स्खलति करतोऽरित्रयुगलं
जडीभूतौ पादौ पदमपि न यातुं प्रभवतः।
इयं मध्येधारं मम समुपयाता लघुतरी
तरेद्वा मज्जेद्वा त्वयि निहितभाराः खलु वयम्॥

मेरी दोनों भुजाएँ थककर चूर-चूर हो गयी हैं और हाथ से पतवार खिसक रही हैं, पाँव ऐसे जकड़ गये हैं कि पग-भर भी आगे नहीं बढ़ सकते। यह मेरी छोटी-सी नैया मझधार में आ पड़ी है, अब यह किनारे लगे या डूब जाय; मैंने तो सब भार तुझ पर छोड़ दिया है॥

पूज्य स्वामी समर्पणानन्द जी सरस्वती
(विद्यामार्तण्ड पं. बुद्धदेव विद्यालङ्कार)

गुरुकुल प्रभात आश्रम, (टीकरी) भोलाझाल, मेरठ।